दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९४ तंत्री-जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २३ अंक नं० ७

संसार भ्रमण का मूल कारण
पुण्य-पाप के प्रति अनुराग है

शुभ निमित्त इस जीव को, मिल्यो कई भव सार।
पै इक सम्यक्दर्श बिन भटकत फियों गँवार॥

बहुतों के साथ मिलना, बहुत जनों से स्नेह दुःख के कारण हैं। जगत को राजी करने और जगत से राजी होने के लिये इस जीव ने अनंत भव बिगाड़े, किंतु इससे अपना भला नहीं हुआ, यदि एक बार ज्ञानी के अभिप्रायानुसार तत्त्व को समझकर आत्मा का भला होने के लिये सावधान हो तो अनंत भवों को नष्ट कर भवभ्रमण रहित होने की सफलता मिलेगी ही, ऐसा मैं लघुत्वभाव से समझा हूँ। (श्री राजचंद्र)

शुभाशुभभाव रागादि हैं, उनका स्वामित्व, कर्तृत्व वह अज्ञान चेतना है, मिथ्यात्व है।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

नवम्बर १९६७] वार्षिक मूल्य ३) (२७१) एक अंक २५ पैसा [कार्तिक सं० २०२४

१०१) देकर आत्मधर्म के आजीवन सदस्य बने

(१४) श्रीमती रतनलालजी सेठी
ठि० मालगंज, इंदौर (मध्यप्रदेश)

(१५) भ.ला. ठोलिया
द्वारा आलोक ठोलिया
शांताक्रुज पूर्व, बम्बई-५५

(१६) श्री नेमीचंदजी पाटनी
द्वारा जयहिन्द स्टील वर्क्स
२ बी-इंडस्ट्रियल इस्टेट
जयपुर साउथ (राजस्थान)

नया प्रकाशन

जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १

(पाँचवीं आवृत्ति)

जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित जैन सिद्धांत ज्ञान में तत्त्वज्ञानी की प्राप्ति में प्रवेश करने के लिये अति स्पष्टता से द्रव्य-गुण-पर्यायों का ज्ञान कराया है। गुरुवर्य श्री गोपालदासजी बरैया कृत जैन सिद्धांत प्रवेशिका के दूसरे अध्याय का आधार मुख्यता से लिया गया है। धर्म जिज्ञासुओं में बहुत मांग चालू रही है। अत: यह पाँचवीं बार सेठी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित हुई है। (चौथी आवृत्ति में तीन हजार पुस्तकें छापी थी) पृष्ठ संख्या १३०, बढ़िया कागज, मूल्य ७५ पैसा थोक मंगाने पर २५ टका कमीशन।

विषय-सूची

१. जीव (आत्मा) की नित्यता-देह से पृथक्ता
२. स्वतंत्रता की घोषणा
३. नय विभाग
४. जब भगवान महावीर का ढाई हजारवाँ निर्वाणोत्सव मनाया जावेगा
५. चैतन्य हीरे का सच्चा मूल्य
६. चैतन्य के उपभोगरूप ज्ञानचेतना
७. वीरत्व
८. तत्त्व चर्चा
९. मोक्षमार्गप्रकाशक में से कुछ वचनामृत
१०. एक क्षण में आत्मा को जानने की तीव्र जिज्ञासा और उसका उपाय
११. अज्ञानी का अपराध
१२. आत्म प्रतीति का सामर्थ्य
१३. ज्ञान गोष्ठी
१४. हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे
१५. सर्वज्ञ देव कथित छहों द्रव्यों की स्वतंत्रता दर्शक सामान्य गुण
१६. लाख बात की एक बात
१७. यशोधर चरित्र
१८. शुद्ध आत्मा की सेवा करता हुआ धर्मी जीवों का संघ शिवपुरी में जा रहा है।
१९. जैन शिक्षण कक्षा में प्रश्नोत्तर
२०. समाचार संग्रह

मुमुक्षु मंडलों को सूचना

नियमसारजी शास्त्र, पंचास्तिकाय शास्त्र तथा समयसार कलश टीका राजमलजी कृत जो लागत मूल्य से भी बहुत कम मूल्य में दी जा रही हैं, इन ग्रंथों का ज्यादा प्रचार होने के लिये हरेक गाँव में सोनगढ़ से प्रकाशित पुस्तकों का विक्रय विभाग रखने से जिज्ञासुओं को ज्यादा सुविधा रहेगी। आत्मधर्म एवं पुस्तकें मंगाते वक्त अपना पता स्पष्ट लिखें। कोई शिकायत हो तो ग्राहक नंबर भी लिखें।

—गुलाबचंद जैन

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

नवम्बर : १९६७ ☆ वर्ष २३वाँ, कार्तिक, वीर नि०सं० २४९४ ☆ अंक : ७

जीव (-आत्मा) की नित्यता-देह से पृथक्ता

आत्मा के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि से उत्पन्न होने की संभावना नहीं है क्योंकि अचेतन पदार्थों से चेतन-आत्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। और जो पृथ्वी आदि रूपी अचेतन पदार्थों या इलेक्ट्रिक अणु हैं, उनका जो क्रमशः धारण, ईरण (गति) और उष्णता-लक्षण स्वभाव है, उसका चैतन्य के साथ अन्वय नहीं पाया जाता है।

यदि आत्मा किसी संयोग के मिश्रण से उत्पन्न होती हो तो, तत्काल उत्पन्न हुए बालक के स्तनपानादिक में अभिलाषा-चेष्टा क्यों दिखती है ? हर्ष, शोक, क्लेश आदि चेष्टा तथा मुँह फाड़कर स्तनपानादि की अभिलाषा आदि तो पूर्व अनुभूत के स्मरण के होने पर होता है-तथा पूर्वभवों का संस्कार स्मरण धारणारूप अनुभव के होने पर होता है। इसप्रकार पूर्वकालीन अनुभव-ज्ञान पान की नित्यता का होना सिद्ध होता है।

मरे हुए कितने ही जीव यक्ष-व्यंतर, भूत-राक्षस जाति के देवों के कुलों में उत्पन्न होकर 'मैं अमुक हूँ' इसप्रकार कहते हुए देखे जाते हैं, कितने ही जीवों को पूर्व भव का स्मरण पाया जाता है, इन सब प्रमाणों से आत्मा (जीव) अनादि कालीन जानन-देखनहारा-चेतनपदार्थ है, यह सिद्ध ही है, जैसा कि कहा है—

'तत्काल-जात बालक के स्तनपान की इच्छा से, व्यंतरादि के देखने से, पूर्व भव के स्मरण से और पृथ्वी आदि भूत चतुष्टय के गुण-धर्म-स्वभाव आदि का अन्वयपना जीव में नहीं पाये जाने से स्वभावतः देह से पृथक् सत्तारूप-ज्ञातादृष्टा और सनातन अर्थात् द्रव्यरूप से नित्य आत्मा स्वयंसिद्ध है। स्वदेह परिमाण है। अपने ही भावों को करने-भोगनेवाला है, सुख-दुःखमय भावों का करना और उनका भोगना जीव के अस्तित्व में है और जीव सदा अमूर्तिक और चैतन्य स्वभाववान है। सुख को चाहना-दुख से डरना इत्यादि चेष्टा से स्पष्टरूप जीव का अस्तित्व देह से सदा भिन्न है और अपने रूप में सदा परिपूर्ण है।

स्वतंत्रता की घोषणा

[चार बोलों से स्वतंत्रता की घोषणा करता हुआ विशेष प्रवचन]

(समयसार कलश २११) (सं० २०२२ कार्तिक सुदी ३-४)

भगवान सर्वज्ञदेव का देखा हुआ वस्तुस्वभाव कैसा है, उसमें कर्ता-कर्मपना किसप्रकार है, वह अनेक प्रकार से दृष्टांत और युक्तिपूर्वक पुनः पुनः समझाते हुए, उस स्वभाव के निर्णय में मोक्षमार्ग किसप्रकार आता है, वह पूज्य गुरुदेव ने इस प्रवचन में बतलाया है। पुनः पुनः भेदज्ञान कराया है और वीतराग मार्ग के रहस्यभूत स्वतंत्रता की घोषणा करते हुए कहा है कि सर्वज्ञदेव द्वारा कहे हुए इस परम सत्य वीतराग विज्ञान को जो समझेगा, उसका अपूर्व कल्याण होगा।

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति ना परस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥२११॥

वस्तु स्वयं अपने परिणाम की कर्ता है, और अन्य के साथ उसका कर्ता-कर्म का संबंध नहीं है। इस सिद्धांत को आचार्यदेव ने चार बोलों से स्पष्ट समझाया है—

(१) परिणाम अर्थात् पर्याय ही कर्म है-कार्य है।

(२) परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी के ही होते हैं, अन्य के नहीं होते। क्योंकि परिणाम अपने-अपने आश्रयभूत परिणामी (द्रव्य) के आश्रय से होते हैं; अन्य का परिणाम अन्य के आश्रय से नहीं होते।

(३) कर्म कर्ता के बिना होता नहीं, अर्थात् परिणाम वस्तु के बिना नहीं होते।

(४) वस्तु की निरंतर एक समान स्थिति नहीं रहती, क्योंकि वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है।

इसप्रकार आत्मा और जड़ सभी वस्तुएँ स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म की कर्ता हैं ऐसा वस्तुस्वरूप का महान सिद्धांत आचार्यदेव ने समझाया है और उसी का यह प्रवचन है। इस प्रवचन में अनेक प्रकार से स्पष्टीकरण करते हुए गुरुदेव ने भेदज्ञान को पुनः पुनः समझाया है।

देखो, इसमें वस्तुस्वरूप को चार बोलों द्वारा समझाया है। इस जगत् में छह वस्तुएँ हैं, आत्मा अनन्त हैं, पुद्गल परमाणु अनन्त हैं, तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ऐसी छहों प्रकार की वस्तुएँ और इनके स्वरूप का वास्तविक नियम क्या है ? सिद्धांत क्या है ? उसे यहाँ चार बोलों में समझाया जा रहा है:—

(१) परिणाम ही कर्म है

प्रथम तो '**ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः**' अर्थात् परिणामी वस्तु का जो परिणाम है, वही निश्चय से उसका कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य; परिणाम अर्थात् अवस्था; पदार्थ की अवस्था ही वास्तव में उसका कर्म-कार्य है। परिणामी अर्थात् अखण्ड वस्तु; वह जिस भाव से परिणमन करे, उसको परिणाम कहते हैं। परिणाम कहो, कार्य कहो, पर्याय कहो या कर्म कहो - वह वस्तु के परिणाम ही हैं।

जैसे कि—आत्मा ज्ञानगुणस्वरूप है; उसका परिणमन होने से जानने की पर्याय हुई, वह उसका कर्म है, वह उसका वर्तमान कार्य है। राग या शरीर, वह कोई ज्ञान का कार्य नहीं; परन्तु 'यह राग है, यह शरीर है'—ऐसा उन्हें जाननेवाला जो ज्ञान है, वह आत्मा का कार्य है। आत्मा के परिणाम, वह आत्मा का कर्म है और जड़ के परिणाम अर्थात् जड़ की अवस्था, वह जड़ का कार्य है—इसप्रकार एक बोल पूर्ण हुआ।

(२) परिणाम, वस्तु का ही होता है, दूसरे का नहीं।

अब, इस दूसरे बोल में कहते हैं कि जो परिणाम होता है, वह परिणामी पदार्थ का ही होता है; परिणाम किसी अन्य के आश्रय से नहीं होता। जिसप्रकार श्रवण के समय जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान कार्य है-कर्म है। वह किसका कार्य है ? वह कहीं शब्दों का कार्य नहीं है परन्तु परिणामी वस्तु जो आत्मा है, उसी का वह कार्य है। परिणामी के बिना परिणाम नहीं होता। आत्मा, परिणामी है—उसके बिना ज्ञान परिणाम नहीं होता - यह सिद्धांत है परन्तु वाणी के बिना ज्ञान नहीं होता - ऐसा नहीं है। शब्दों के बिना ज्ञान नहीं होता - ऐसा नहीं, परन्तु

आत्मा के बिना ज्ञान नहीं होता। इसप्रकार परिणामी के आश्रय से ही ज्ञानादि परिणाम हैं।

देखो, यह महासिद्धांत है, वस्तुस्वरूप का अबाधित नियम है।

परिणामी के आश्रय से ही उसके परिणाम होते हैं। जाननेवाला आत्मा, वह परिणामी है, उसके आश्रित ही ज्ञान होता है; वे ज्ञान परिणाम आत्मा के ही हैं, वाणी के नहीं। वाणी के रजकणों के आश्रित ज्ञान परिणाम नहीं होते, परन्तु ज्ञानस्वभावी आत्मवस्तु के आश्रय से वे परिणाम होते हैं। आत्मा त्रिकाल स्थित रहनेवाला परिणामी है, वह स्वयं रूपांतर होकर नवीन-नवीन अवस्थाओं को धारण करता है। उसके ज्ञान-आनंद इत्यादि जो उसके वर्तमान भाव हैं, वे उसके परिणाम हैं।

'परिणाम' परिणामी के ही हैं अन्य के नहीं—इसमें जगत के सभी पदार्थों का नियम आ जाता है। परिणाम, परिणामी के ही आश्रित होते हैं, अन्य के आश्रित नहीं होते। ज्ञानपरिणाम आत्मा के आश्रित हैं, भाषा आदि अन्य के आश्रित ज्ञान के परिणाम नहीं हैं। इसलिए इसमें पर की ओर देखना नहीं रहता; परन्तु अपनी वस्तु के सामने देखकर स्वसन्मुख परिणमन करना रहता है; उसमें मोक्षमार्ग आ जाता है।

वाणी तो अनंत जड़ परमाणुओं की अवस्था है, वह अपने जड़ परमाणुओं के आश्रित है। बोलने की जो इच्छा हुई, उसके आश्रित भाषा के परिणाम तीन काल में नहीं हैं। जब इच्छा हुई और भाषा निकली, उस समय उसका जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान आत्मा के आश्रय से ही हुआ है। भाषा के आश्रय से तथा इच्छा के आश्रय से ज्ञान नहीं हुआ है।

परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी के ही होते हैं; अन्य के आश्रय से होते नहीं—इसप्रकार अस्ति-नास्ति से अनेकान्त द्वारा वस्तुस्वरूप समझाया है। सत्य के सिद्धांत की अर्थात्, वस्तु के सत्स्वरूप की यह बात है, उसको पहिचाने बिना मूढ़तापूर्वक अज्ञानता में ही जीवन पूर्ण कर डालता है। परंतु भाई! आत्मा क्या है? जड़ क्या है? उसकी भिन्नता समझकर वस्तुस्वरूप के वास्तविक सत् को समझे बिना ज्ञान में सत्पना नहीं आता, अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता, वस्तुस्वरूप के सत्यज्ञान के बिना सच्ची रुचि और श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती, और सच्ची श्रद्धा के बिना वस्तु में स्थिरतारूप चारित्र प्रगट नहीं होता, शांति नहीं होती, समाधान और सुख नहीं होता। इसलिए वस्तुस्वरूप क्या है, उसे प्रथम समझना चाहिये। वस्तुस्वरूप को समझने से मेरे परिणाम पर से और पर के परिणाम मुझसे—ऐसी पराश्रितबुद्धि

नहीं रहती अर्थात् स्वाश्रित स्वसन्मुख परिणाम प्रगट होता है, यही धर्म है।

आत्मा को जो ज्ञान होता है, उसको जानने के परिणाम आत्मा के आश्रित हैं; वे परिणाम, वाणी के आश्रय से नहीं हुए हैं, कान के आश्रय से नहीं हुए हैं, तथा उस समय की इच्छा के आश्रय से भी नहीं हुए हैं। यद्यपि इच्छा भी आत्मा के परिणाम है, परंतु उन परिणामों के आश्रित ज्ञान परिणाम नहीं हैं; ज्ञान परिणाम आत्मावस्तु के आश्रित हैं;—इसलिए वस्तुसन्मुख दृष्टि लगा।

बोलने की इच्छा हो, होंठ हिलें, भाषा निकले और उस समय उसप्रकार का ज्ञान हो—ऐसी चारों क्रियाएँ एक साथ होते हुए भी कोई क्रिया किसी के आश्रित नहीं, सभी अपने-अपने परिणामी के ही आश्रित हैं। इच्छा, वह आत्मा के चारित्रगुण के परिणाम हैं; होंठ हिले, वह होंठ के रजकणों की अवस्था है; वह अवस्था इच्छा के आधार से नहीं हुई। भाषा प्रगट हो, वह भाषावर्गणा के रजकणों की अवस्था है, वह अवस्था इच्छा के आश्रित या होंठ के आश्रित नहीं हुई, परंतु परिणामी ऐसे रजकणों के आश्रय से वह भाषा उत्पन्न हुई है और उस समय का ज्ञान आत्मवस्तु के आश्रित है, इच्छा अथवा भाषा के आश्रित नहीं है,—ऐसा वस्तुस्वरूप है।

भाई, तीन काल-तीन लोक में सर्वज्ञ भगवान का देखा हुआ यह वस्तुस्वभाव है, उसे जाने बिना और समझने की परवाह बिना अंधे की भाँति चला जाता है परंतु वस्तुस्वरूप के सच्चे ज्ञान के बिना किसी प्रकार कहीं भी कल्याण नहीं हो सकता। इस वस्तुस्वरूप को बारंबार लक्ष लेकर परिणामों से भेदज्ञान करने के लिये यह बात है। एक वस्तु के परिणाम अन्य वस्तु के आश्रित तो हैं नहीं, परन्तु उस वस्तु में भी उसके एक परिणाम के आश्रित दूसरे परिणाम नहीं हैं। परिणामी वस्तु के आश्रित ही परिणाम हैं - यह महान सिद्धांत है।

प्रतिक्षण इच्छा, भाषा और ज्ञान - यह तीनों एक साथ होते हुए भी इच्छा और ज्ञान जीव के आश्रित हैं और भाषा, वह जड़ के आश्रित हैं; इच्छा के कारण भाषा हुई और भाषा के कारण ज्ञान हुआ—ऐसा नहीं; इसीप्रकार इच्छा के आश्रित ज्ञान भी नहीं। इच्छा और ज्ञान—ये दोनों हैं तो आत्मा के परिणाम, तथापि एक के आश्रित दूसरे के परिणाम नहीं हैं। ज्ञानपरिणाम और इच्छापरिणाम दोनों भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञान, वह इच्छा का कार्य नहीं है और इच्छा, वह ज्ञान का कार्य नहीं है। जहाँ ज्ञान का कार्य इच्छा भी नहीं, वहाँ जड़ भाषा आदि तो उसका कार्य कहाँ से हो सकता है ? वह तो जड़ का कार्य हैं।

जगत में जो भी कार्य होते हैं, वह सत् की अवस्था होती है, किसी वस्तु के ही परिणाम होते हैं, परंतु वस्तु के बिना अधर से परिणाम नहीं होते। परिणामी का परिणाम होता है, स्थिर रहनेवाली वस्तु के आश्रित परिणाम होता है; पर के आश्रित नहीं होता।

परमाणु में होंठों का हिलना और भाषा का परिणमन—यह दोनों भी भिन्न वस्तु हैं। आत्मा में इच्छा और ज्ञान—ये दोनों परिणाम भी भिन्न-भिन्न हैं।

होंठ हिलने के आश्रित भाषा की पर्याय नहीं है। होंठ का हिलना, वह होंठ के पुद्गलों के आश्रित है, भाषा का परिणमन, वह भाषा के पुद्गलों के आश्रित है।

होंठ और भाषा

इच्छा और ज्ञान

—इन चारों का काल एक होने पर भी चारों परिणाम अलग हैं।

उसमें भी इच्छा और ज्ञान—ये दोनों परिणाम आत्माश्रित होने पर भी इच्छापरिणाम के आश्रित ज्ञानपरिणाम नहीं है। ज्ञान, वह आत्मा का परिणाम है, इच्छा का नहीं; इसीप्रकार इच्छा, वह आत्मा का परिणाम है, ज्ञान का नहीं। इच्छा को जाननेवाला ज्ञान, वह इच्छा का कार्य नहीं है, उसीप्रकार वह ज्ञान, इच्छा को उत्पन्न भी नहीं करता। इच्छा परिणाम आत्मा का कार्य अवश्य है परन्तु ज्ञान का कार्य नहीं। भिन्न-भिन्न गुण के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं, एक ही द्रव्य में होने पर भी एक गुण के आश्रित दूसरे गुण के परिणाम नहीं हैं।

कितनी स्वतंत्रता!! और इसमें पर के आश्रय की बात ही कहाँ रही?

आत्मा में चारित्रगुण, ज्ञानगुण इत्यादि अनंत गुण हैं, उनमें चारित्र के विकृत परिणाम, सो इच्छा है, वह चारित्रगुण के आश्रित है, और उस समय उस इच्छा का ज्ञान हुआ, यह ज्ञानगुणरूप परिणामी के परिणाम हैं, वह कहीं इच्छा के परिणाम के आश्रित नहीं हैं? इसप्रकार इच्छापरिणाम और ज्ञानपरिणाम दोनों का भिन्न-भिन्न परिणमन है, एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं।

सत् जैसा है, उसीप्रकार उसका ज्ञान करे तो सत् ज्ञान हो और सत् का ज्ञान करे तो उसका बहुमान एवं यथार्थ का आदर प्रगट हो, रुचि हो, श्रद्धा दृढ़ हो और उसमें स्थिरता हो, उसे धर्म कहा जाता है। सत् से विपरीत ज्ञान किया जाये तो धर्म नहीं होता। स्व में स्थिर होना ही मूल धर्म है, परंतु वस्तुस्वरूप के सच्चे ज्ञान बिना स्थिरता कहाँ करेगा?

आत्मा और शरीरादि रजकण भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं; शरीर की अवस्था, हल-चलन-बोलना - उसके परिणामी पुद्गलों का परिणाम हैं; उन पुद्गलों के आश्रित वह परिणाम उत्पन्न हुए हैं, इच्छा के आश्रित नहीं; उसीप्रकार इच्छा के आश्रित ज्ञान भी नहीं। पुद्गल के परिणाम आत्मा के आश्रित मानना और आत्मा के परिणाम, पुद्गलाश्रित मानना, उसमें तो विपरीत मान्यतारूप मूढ़ता है।

जगत में भी जो वस्तु जैसी हो, उससे विपरीत बतलानेवाले को लोग मूर्ख कहते हैं, तो फिर सर्वज्ञ कथित यह लोकोत्तर वस्तुस्वभाव जैसा है, वैसा न मानकर विरुद्ध माने तो वह लोकोत्तर मूर्ख और अविवेकी ही है। विवेकी और विचक्षण कब कहा जाये ? कि वस्तु के जो परिणाम हुए, उसे कार्य मानकर, उसे परिणामी-वस्तु के आश्रित समझे और दूसरे के आश्रित न माने, तभी; और तभी स्व-पर का भेदज्ञान होता है, और तभी विवेकी है - ऐसा कहने में आता है। आत्मा के परिणाम, पर के आश्रित नहीं होते। विकारी और अविकारी जो भी परिणाम जिस वस्तु के हैं, वह उसी वस्तु के आश्रित हैं, अन्य के आश्रित नहीं।

पदार्थ के परिणाम, वह उसका कार्य है—यह एक बात; दूसरी बात यह कि वह परिणाम उसी वस्तु के आश्रय से होते हैं; अन्य के आश्रय से नहीं होते।—यह नियम जगत के समस्त पदार्थों में लागू होते हैं। देखो, भाई! यह तो भेदज्ञान के लिए वस्तुस्वभाव के नियम बतलाये गये हैं। धीरे-धीरे दृष्टांत से मुक्ति से वस्तुस्वरूप सिद्ध किया जाता है।

किसी को ऐसे भाव उत्पन्न हुए कि मैं सौ रुपये दान में दूँ, उसका वह परिणाम आत्मवस्तु के आश्रित हुए हैं; वहाँ रुपये जाने की जो क्रिया होती है, वह रुपये के रजकणों के आश्रित है, जीव की इच्छा के आश्रित नहीं। अब उस समय उन रुपयों की क्रिया का ज्ञान, और इच्छा के भाव का ज्ञान होता है, वह ज्ञान-परिणाम आत्माश्रित हुआ है—इसप्रकार परिणामों का विभाजन करके वस्तुस्वरूप का ज्ञान करना चाहिये।

भाई! तेरा ज्ञान और तेरी इच्छा, यह दोनों परिणाम आत्मा में होते हुए भी वे एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं तो फिर पर के आश्रय की तो बात ही कहाँ रही ? दान की इच्छा हुई और रुपये दिये गये, वहाँ रुपये जाने की क्रिया भी हाथ के आश्रित नहीं, हाथ का हिलना इच्छा के आश्रित नहीं, और इच्छा का परिणमन, वह ज्ञान के आश्रित नहीं है। सभी अपने-अपने आश्रयभूत वस्तु के आधार से हैं।

देखो, यह सर्वज्ञ के विज्ञानपाठ हैं; ऐसे वस्तुस्वरूप का ज्ञान, वही सच्चा पदार्थविज्ञान है। जगत के पदार्थों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे सदा एकरूप नहीं रहते, परंतु परिणमन करके नवीन-नवीन अवस्थारूप कार्य किया करते हैं—यह बात चौथे बोल में कही जायेगी। जगत के पदार्थों का स्वभाव ऐसा है कि वह नित्यस्थायी रहे और उसमें प्रतिक्षण नवीन-नवीन अवस्थारूप कार्य उसके अपने ही आश्रित हुआ करे। वस्तुस्वभाव का ऐसा ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

जीव को इच्छा हुई, इसलिये हाथ हिला और सौ रुपये दिये गये - ऐसा नहीं है। इच्छा का आधार आत्मा है, और हाथ तथा रुपयों का आधार परमाणु है।

रुपये जाना थे, इसलिये इच्छा हुई - ऐसा भी नहीं है।

हाथ का हलन-चलन, वह हाथ के परमाणुओं के आधार से है।

रुपयों का आना-जाना, वह रुपयों के परमाणुओं के आधार से है।

यह तो भिन्न-भिन्न द्रव्य के परिणामों की भिन्नता की बात हुई; यहाँ तो उससे भी आगे अंतर की बात लेना है, एक ही द्रव्य के अनेक परिणाम भी एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं - ऐसा बतलाना है। राग और ज्ञान दोनों के कार्य भिन्न हैं, एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं।

किसी ने प्रतिकूलता उत्पन्न करके गाली दी और जीव को द्वेष के पाप-परिणाम हुए; वहाँ वे पाप के परिणाम प्रतिकूलता के कारण नहीं हुए, और गाली देनेवाले के आश्रित भी नहीं हुए, परंतु चारित्रगुण के आश्रित हुए हैं, चारित्रगुण ने उस समय उस परिणाम के अनुसार परिणमन किया है। अन्य तो निमित्तमात्र हैं।

अब, द्वेष के समय उसका ज्ञान हुआ कि 'मुझे यह द्वेष हुआ'—यह ज्ञानपरिणाम, ज्ञानगुण के आश्रित है; क्रोध के आश्रित नहीं। ज्ञानस्वभावी द्रव्य के आश्रित ज्ञानपरिणाम होते हैं, अन्य के आश्रित नहीं होते। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन परिणाम, सम्यग्ज्ञान परिणाम, आनन्द परिणाम इत्यादि में भी ऐसा ही समझना। यह ज्ञानादि परिणाम द्रव्य के आश्रित हैं; अन्य के आश्रित नहीं हैं तथा परस्पर एक-दूसरे के आश्रित भी नहीं हैं।

गाली के शब्द, अथवा द्वेष के समय उसका जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान शब्दों के आश्रित नहीं और क्रोध के आश्रित भी नहीं है, उसका आधार तो ज्ञानस्वभावी वस्तु है,—इसलिए उसके ऊपर दृष्टि लगा तो तेरी पर्याय में मोक्षमार्ग प्रगट हो; इस मोक्षमार्गरूपी कार्य का कर्ता भी तू ही है; अन्य कोई नहीं।

अहो, यह तो सुगम और स्पष्ट बात है। लौकिक पढ़ाई अधिक न की हो, तथापि यह समझ में आ जाए – ऐसा है। जरा अंतर में उतरकर लक्ष में लेना चाहिये कि आत्मा अस्तिरूप है, उसमें अनंत गुण हैं; ज्ञान है, आनंद है, श्रद्धा है, अस्तित्व है; इसप्रकार अनंत गुण हैं। इन अनंत गुणों के भिन्न-भिन्न अनंत परिणाम प्रति समय होते हैं, उन सभी का आधार परिणामी—ऐसा आत्मद्रव्य है, अन्य वस्तु तो उसका आधार नहीं है, परन्तु अपने में दूसरे गुणों के परिणाम भी उनका आधार नहीं है,—जैसे कि-श्रद्धापरिणाम का आधार ज्ञानपरिणाम नहीं है और ज्ञानपरिणाम का आधार श्रद्धा नहीं; दोनों परिणामों का आधार आत्मा ही है। इसीप्रकार सर्व गुणों के परिणामों के लिये समझना। इसप्रकार परिणाम, परिणामी का ही है; अन्य का नहीं।

इस २११ वें कलश में आचार्यदेव द्वारा कहे गये वस्तुस्वरूप के सिद्धांत के चार बोलों में से अभी दूसरे बोल का विवेचन चल रहा है। प्रथम तो कहा कि '**परिणाम एव किल कर्म**' और फिर कहा कि '**स भवति परिणामिन एव, न अपरस्य भवेत्**' परिणाम ही कर्म है, और वह परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं;—ऐसा निर्णय करके स्वद्रव्यसन्मुख लक्ष जाने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है।

सम्यग्दर्शन परिणाम हुए, वह आत्मा का कर्म है, वह आत्मारूप परिणामी के आधार से हुए हैं। पूर्व के मंद राग के आश्रय से अथवा वर्तमान में शुभराग के आश्रय से सम्यग्दर्शन परिणाम नहीं हुए। यद्यपि राग भी है तो आत्मा का परिणाम, परंतु श्रद्धा परिणाम से रागपरिणाम अन्य हैं, वे श्रद्धा के परिणाम, राग के आश्रित नहीं हैं। क्योंकि परिणाम परिणामी के ही आश्रय से होते हैं; अन्य के आश्रय से नहीं होते।

इसीप्रकार अब चारित्र परिणाम में-आत्मस्वरूप में स्थिरता, वह चारित्र का कार्य है; वह कार्य श्रद्धा परिणाम के आश्रित नहीं, ज्ञान के आश्रित नहीं, परंतु चारित्र गुण धारण करनेवाले आत्मा के ही आश्रित है। शरीरादि के आश्रय से चारित्र नहीं है।

श्रद्धा के परिणाम आत्मद्रव्य के आश्रित हैं;
ज्ञान के परिणाम आत्मद्रव्य के आश्रित हैं;
स्थिरता के परिणाम आत्मद्रव्य के आश्रित हैं;
आनंद के परिणाम आत्मद्रव्य के आश्रित हैं।

बस, मोक्षमार्ग के सभी परिणाम स्वद्रव्याश्रित हैं; अन्य के आश्रित नहीं हैं, उससमय

अन्य (रागादि) परिणाम होते हैं, उनके आश्रित भी यह परिणाम नहीं हैं। एक समय में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र इत्यादि अनंत गुणों के परिणाम वह धर्म, उसका आधार धर्मी अर्थात् परिणमित होनेवाली वस्तु है; उससमय अन्य जो अनेक परिणाम होते हैं, उनके आधार से श्रद्धा इत्यादि के परिणाम नहीं हैं। निमित्तादि के आधार से तो नहीं हैं, परन्तु अपने दूसरे परिणाम के आधार से भी कोई परिणाम नहीं है। एक ही द्रव्य में एक साथ होनेवाले परिणामों में भी एक परिणाम दूसरे परिणाम के आश्रित नहीं; द्रव्य के ही आश्रित सभी परिणाम हैं, सभी परिणामोंरूप से परिणमन करनेवाला द्रव्य ही है—अर्थात्, द्रव्यसन्मुख लक्ष जाते ही सम्यक् पर्यायें प्रगट होने लगती हैं।

वाह! देखो, आचार्यदेव की शैली थोड़े में बहुत समा देने की है। चार बोलों के इस महान सिद्धांत में वस्तुस्वरूप के बहुत से नियमों का समावेश हो जाता है। यह त्रिकाल सत्य का सर्वज्ञ द्वारा निश्चित किया हुआ सिद्धांत है। अहो, यह परिणामी के परिणाम की स्वाधीनता, सर्वज्ञदेव द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप का तत्त्व, सन्तों ने इसका विस्तार करके आश्चर्यकारी कार्य किया है, पदार्थ का पृथक्करण करके भेदज्ञान करवाया है। अंतर में इसका मंथन करके देखे तो मालूम हो कि अनंत सर्वज्ञों तथा संतों ने ऐसा ही वस्तुस्वरूप कहा है और ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।

सर्वज्ञ भगवंत दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा तत्त्व कहते आये हैं—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है; दिव्यध्वनि तो परमाणुओं के आश्रित है।

कोई कहे कि अरे, दिव्यध्वनि भी परमाणु आश्रित है? हाँ, भाई! दिव्यध्वनि वह पुद्गल का परिणाम है और पुद्गलपरिणाम का आधार तो पुद्गलद्रव्य ही होता है; जीव उसका आधार नहीं हो सकता। भगवान का आत्मा तो अपने केवलज्ञानादि का आधार है। भगवान का आत्मा तो केवलज्ञान-दर्शन-सुख इत्यादि निज-परिणामरूप परिणमन करता है, परन्तु कहीं देह और वाणीरूप अवस्था धारण करके परिणमित नहीं होता; उसरूप तो पुद्गल ही परिणमित होता है। परिणाम, परिणामी के ही होते हैं; अन्य के नहीं।

भगवान की सर्वज्ञता के आधार से दिव्यध्वनि के परिणाम हुए - ऐसा वस्तुस्वरूप नहीं है। भाषा परिणाम अनंत पुद्गलाश्रित हैं और सर्वज्ञता आदि परिणाम, जीवाश्रित है; इसप्रकार दोनों की भिन्नता है। कोई किसी का कर्ता या आधार नहीं है।

देखो, यह भगवान आत्मा की अपनी बात है। समझ में नहीं आयेगी, ऐसा नहीं मानना; अंतर्लक्ष करे तो समझ में आये—ऐसी सरल है। देखो, लक्ष में लो कि अंदर कोई वस्तु है या नहीं ? और यह जो जानने के या रागादि के भाव होते हैं, इन भावों का कर्ता कौन है ? आत्मा स्वयं उनका कर्ता है।—इसप्रकार आत्मा को लक्ष में लेने के लिये दूसरी पढ़ाई की कहाँ आवश्यकता है ? दुनिया की बेगार करके दु:खी होता है, उसके बदले यदि वस्तुस्वभाव को समझे तो कल्याण हो जाये। अरे जीव ! ऐसे सुन्दर न्यायों द्वारा संतों ने वस्तुस्वरूप समझाया है, उसे तू समझ !

वस्तुस्वरूप के दो बोल हुए। (शेष दो बोल आगामी अंक में)

नय विभाग

आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये;
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिव-मग सो द्विविध विचारो;
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो॥१॥

—छहढाला

शब्दार्थ सुगम है। भावार्थ – जब और जहाँ सत्यार्थ, भूतार्थरूप निश्चयमार्ग हो, वहाँ उचित निमित्त में गुणस्थानक के योग्य ही व्यवहार होता है। जैसे गति में निमित्तकारण धर्मास्तिकाय होते हैं। उसीप्रकार सत्यार्थ मोक्षमार्ग में निमित्त सर्वज्ञ-वीतराग कथित व्यवहार जो है, वही निमित्त होगा। [अन्यमति कथित कल्पित अनुचित निमित्त नहीं होगा। जैसे श्वेताम्बर मत में मोक्षमार्ग के निमित्तरूप व्यवहारमोक्षमार्ग के नाम पर १५ भेद से मोक्ष मानकर

कैसी भी जाति, वेश, वस्त्रादिसहितपना, अभक्ष्य भक्षण आदि अनुचित निमित्त का सहचारि निमित्तपना होने पर भी मोक्षमार्ग मानते हैं और जब कोई तर्क करे कि ऐसा क्यों ? तब कहते हैं कि तत्त्व केवलीगम्य है, कौन निश्चय-व्यवहार मार्ग सच्चे हैं, हम निर्णयसहित नहीं कह सकते है, भगवान का मार्ग अनेकान्त है, चाहे जैसा बाह्य वेष-क्रिया आदि व्यवहार हो हमें क्या, हम निर्णय करने के अधिकारी नहीं हैं, हमारे आगम (शास्त्र में) जो लिखा है, वह सत्य मानकर उनकी श्रद्धा करते हैं। अत: ऐसी दुतरफा का श्रद्धा श्वेताम्बर मत में होने से श्री गोम्मटसार में उनको सांशयिक मत गिने हैं।

कोई कहे हम श्रद्धा में निश्चय को रखते, प्रवृत्ति में व्यवहार को रखते, तो उसका समाधान मोक्षमार्गप्रकाशक में भी कहा है।]

चारित्र के विषय में—

सुनिश्चित निर अपवाद सम्यक् एकांत नियम तो ऐसा ही है कि मोक्षमार्ग में सम्यक्चारित्र तो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक ही होता है। वास्तव में चारित्र तो वीतराग भावरूप एक ही प्रकार का है किन्तु निम्नदशा में पूर्ण वीतरागता नहीं होती। तब वहाँ निमित्तरूप राग किसप्रकार के होते हैं, उसका ज्ञान कराने के लिये नियम से यह ही निमित्त होते हैं, गुणस्थान से विरुद्ध निमित्त नहीं होते हैं, ऐसा समझने समझाने के लिये चारित्र एक प्रकार होने पर उसका निरूपण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकार निरूपण किया है।

कोई कहे कि प्रथम व्यवहार ही होता है तो ऐसा नहीं है।

कारण कि सम्यग्दर्शन प्रगट होते ही उसके साथ ही साथ सम्यक् भावश्रुतज्ञान होता है और निश्चयनय तथा व्यवहारनय यह दोनों सम्यक् श्रुतज्ञान के अवयव (अंश-भेद) हैं, इसलिये प्रथम दशा में केवल व्यवहार ही नहीं होगा और मिथ्यादृष्टि को तो निश्चय या व्यवहार हो ही नहीं सकते; इसलिये 'व्यवहार प्रथम होता है और निश्चयनय पश्चात् होता है' ऐसा माननेवाले को नयों के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं है, और चतुर्थ गुणस्थान से ही जघन्य अंश में निश्चयधर्म, निश्चय स्वरूपाचरण की कणिका व्यक्त है, ऐसा उसे सापेक्ष निश्चय अंश का ज्ञान नहीं है। सम्यग्दर्शन के पूर्व जो कुछ व्यवहार आचरण होते हैं, उसको शास्त्र में भगवान ने व्यवहाराभास, बालव्रत, बालतप कहा है।

नय निरपेक्ष नहीं होते

सम्यग्दर्शन को सराग या वीतराग कहना तो चारित्रगुण में अशुद्धता-शुद्धता का सहचारीपना का ज्ञान कराने के लिये कहा है, उसे ७-८ गुणस्थानक से निश्चय सम्यग्दर्शन का निरूपण किया तो समझना चाहिये कि चारित्रगुण की मुख्यता से यह कथन है। किन्तु सम्यग्दर्शन के दर्शन (श्रद्धागुण को) गुण को अपने सम्यग्दर्शन के रूप में लक्षणदृष्टि से देखा जाये तो चतुर्थ गुणस्थान से ही निश्चय सम्यग्दर्शन निरन्तर गमनरूप, परिणमनरूप है। उसमें प्रत्यक्ष-परोक्ष या गौण मुख्य के भेद नहीं हैं-यह भेद तो अपूर्ण ज्ञान में ही है।

कोई माने कि 'प्रथम शुरु में अकेला व्यवहार ही होता है' तो ऐसा कभी नहीं है, कारण कि नय निरपेक्ष नहीं होते। निश्चयसम्यग्दर्शन प्रगट होने से पूर्व यदि मात्र व्यवहारधर्म ही हो और व्यवहारनय ही हो तो निश्चयनय की अपेक्षारहित निरपेक्षनय हुआ; प्रथम अकेला व्यवहारनय और व्यवहारधर्म हो तो अज्ञानदशा में, मिथ्यादृष्टि दशा में भी सम्यक्नय मानना पड़ेगा; किन्तु 'निरपेक्षा नयाः-मिथ्या सापेक्षा वस्तु तुऽर्थकृत्' (आप्तमीमांसा श्लोक १०८) ऐसा आगम वचन है; इसलिये अज्ञानदशा में किसी जीव को व्यवहारनय नहीं हो सकता, किंतु व्यवहाराभास अथवा निश्चयाभासरूप मिथ्यानय हो सकता है।

जीव निज ज्ञायकस्वभाव के आश्रय द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट करे, तब सर्वज्ञ-वीतराग कथित नवतत्त्व, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा संबंधी रागमिश्रित विचार तथा मंदकषायरूप शुभभाव—जो कि इस जीव को पूर्व काल में था, उसे भूतनैगमनय द्वारा निमित्त-व्यवहारकारण कहा जाता है। (देखो, परमात्मप्रकाश, अध्याय २, गाथा १४ की टीका) तथा उसी जीव को निश्चयसम्यग्दर्शन की भूमिका में शुभराग और बाह्य निमित्त किसप्रकार के होते हैं, उनका सहचरपना बतलाने के लिये वर्तमान शुभराग को व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। ऐसा कहने का कारण यह है कि उससे भिन्न-विरुद्धप्रकार के निमित्त उस दशा में किसी को हो नहीं सकते।— इसप्रकार निमित्त-व्यवहार होता है, तथापि वह यथार्थ कारण नहीं है तथा काल्पनिक भी नहीं है।

आत्मा स्वयं ही सुखस्वरूप है, इसलिये आत्मा के आश्रय से ही सुख प्रगट हो सकता है, किंतु किसी निमित्त या व्यवहार के आश्रय से सुख प्रगट नहीं हो सकता।

'मोक्षमार्ग तो एक ही है; वह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप है।'

(प्रवचनसार, गाथा ८२-१९९)

अंतरंग में स्वयं ने तो निर्धार करके यथावत् निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग को पहचाना नहीं, जिन-आज्ञा मानकर निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दो प्रकार मानते हैं। सो मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाये, सो निश्चयमोक्षमार्ग है और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं परंतु मोक्षमार्ग निमित्त है व सहचारी है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये, सो व्यवहार मोक्षमार्ग है; क्योंकि निश्चय -व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सच्चा निरूपण, सो निश्चय; उपचार निरूपण, सो व्यवहार; इसलिये निरूपण अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना। [किंतु] एक निश्चयमोक्षमार्ग है, एक व्यवहारमोक्षमार्ग है—इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध सहित है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ २४८-४९ टोडरमल स्मारक ग्रंथमाला प्रकाशित।]

जब भगवान महावीर का ढाई हजारवाँ

निर्वाणोत्सव मनाया जायेगा....

आज से लगभग २४९४ वर्ष पूर्व इस भरत क्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर परमात्मा विचर रहे थे और दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे थे। भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बतलाकर भगवान पावापुरी से मोक्ष पधारे... इस प्रसंग को २४९४ वर्ष हो गये हैं.... छह वर्ष के बाद ढाई हजार (२५००) वर्ष पूर्ण होंगे। भगवान के बतलाये हुए मोक्षमार्ग का मंगल-प्रवाह संतजनों की परंपरा से आज भी इस भरतक्षेत्र में प्रवाहित हो रहा है तथा पंचम काल के अंत तक (अर्थात् अभी १८५०० वर्ष तक) यह मार्ग चलता रहेगा। ऐसे मोक्षमार्ग के प्रदर्शक भगवान महावीर का निर्वाण-दिन दीपावली के रूप में मनाकर भारत के जैन उनको याद करते हैं। परंतु छह वर्ष के बाद जब २५०० वर्ष का निर्वाण दिवस आयेगा, तब वह इस भारत का एक अपूर्व महोत्सव होगा.... भारत के कोने-कोने में उससमय महावीर भगवान की ध्वनि गूंज उठेगी। इस महान प्रसंग के लिये अभी से जैन समाज जागृत हो चुका है... हम भी जागृत होकर प्रभु ने जो पंथ बतलाया उस पंथ पर शीघ्रता से प्रयाण करते हुए छह वर्ष में जितना बने उतना भगवान महावीर के समीप पहुँच जायें।

चैतन्य हीरे का सच्चा मूल्य

(वीर संवत २४९२ दीपावली के प्रवचन में से कलश टीका, पृष्ठ १८८)

चतुर पुरुष शुद्धस्वरूप का अनुभव किसप्रकार करते हैं–इसकी यह बात है। चेतना वस्तु का निर्विकल्प अनुभव ही शोभा है। विकल्प में कहीं शोभा नहीं। प्रथम तत्वनिर्णय के समय विकल्प थे परंतु अनुभव के समय विकल्प नहीं। चैतन्यस्वरूप की सत्ता में विकल्प का अभाव है। जिसप्रकार मोती के हार का निर्माण होती द्वारा ही होता है, कहीं गूंथनेवाले के विकल्पों द्वारा नहीं होता; हार की शोभा मोती द्वारा ही है, और देखनेवाला भी मोती की झलक से ही हार की शोभा देखता है। गूँथनेवाले के विकल्पों से कहीं हार की शोभा नहीं देखता। उसीप्रकार आत्मा की शोभा उसकी निर्विकल्प चेतनावस्तु के स्वसंवेदन–प्रत्यक्षरूप अनुभव से ही है; अनेक प्रकार के विकल्पों द्वारा कहीं उसकी शोभा नहीं।

जिसप्रकार मूल्यवान हीरा राख के ढेर में पड़ा हो तो भी उसका मूल्य कम नहीं होता, उसी प्रकार इस देहरूपी मांस के ढ़ेर में बहुमूल्य चैतन्य हीरा पड़ा हुआ है, विकल्प हो उससे कहीं चैतन्य हीरे का मूल्य कम नहीं होता; और उन विकल्पों द्वारा चैतन्य हीरे का मूल्य नहीं आँका जा सकता। धर्मी तो विकल्प से पार अनंत गुण के पिंडरूप शुद्ध चैतन्य सत्ता को स्वसंवेदन में लेकर चैतन्य हीरे का मूल्यांकन करते हैं। विकल्प अनेक प्रकार के होते हैं, परंतु अनुभव अनेक प्रकार का नहीं होता, अनुभव में तो शुद्ध चैतन्य वस्तु का एक ही प्रकार है।

जिसप्रकार हीरा चाहे जैसे संयोगों में पड़ा हो, परंतु जौहरी उसकी कीमत जानकर संयोगों से पृथक् उस हीरे को उठा लेता है। मैले संयोगों के बीच हो, उससे हीरे का मूल्य कम नहीं हो जाता। संवत् १९८६ के विहार काल में ढसा ग्राम में एक टूटी हुई पुरानी अलमारी में केवल एक ही पुस्तक रखी हुई थी। पुरानी हिन्दी पुस्तक हाथ में लेकर जहाँ पढ़ी वहाँ स्वामीजी को ऐसा लगा कि अरे, ऐसी पुस्तक यहाँ कैसे?—यह पुस्तक थी 'मोक्षमार्गप्रकाशक' अलमारी में अकेली पड़ी पड़ी किसी जौहरी की राह देख रही थी। स्वामीजी ने देखी और बहुमान प्रगट हुआ। गुरुदेव का भाव देखकर संघ के मुखिया नें कहा—महाराज! 'हमारे यह काम की नहीं', आप ले जाओ, आपके उपयोग की है। तभी से यह मोक्षमार्गप्रकाशक गुरुदेव के पास में है; जिसे आज की सभा में बतलाया। यह तो शास्त्र की बात हुई; इसीप्रकार अंतर का मोक्षमार्ग आत्मा में है, वह आत्मा के मूल्यवान स्वानुभव द्वारा धर्मात्मा पहिचान लेता है। स्वानुभव द्वारा आत्मा की शोभा है। चैतन्य हीरा अपने स्वानुभव से प्रकाशित हो उठता है।

चैतन्य के उपभोगरूप ज्ञानचेतना

[शुद्ध चेतना द्वारा शुद्ध चैतन्य के स्वाद का वेदन करे, वह सम्यक्त्वी है]

(कलश टीका पर प्रवचन : राजकोट)

जीव ने अपने चैतन्यस्वभाव की महत्ता को नहीं जाना और पर के प्रति सच्ची उदासीनता कभी नहीं की; इसलिए चौरासी के अवतार धारण कर जहाँ-तहाँ परिभ्रमण कर रहा है। जिसप्रकार आँधी में तिनका उड़ता है, उसीप्रकार अज्ञानरूपी आँधी में फँसकर आत्मा तिनके की भाँति चार गतियों में उड़ता-फिरता है। भाई, तेरा चिदानंद आत्मा अनन्त गुणों का धाम है; उसे भूलकर तू जड़ शरीर की सुन्दरता में मूर्छित हो गया-यह बड़ा भ्रम है। अज्ञानी जीव, शरीर की शोभा से अपनी शोभा मानता है। अरे, पुण्य के द्वारा मेरी शोभा-ऐसा मानकर तू अपनी चैतन्य शोभा को भूल रहा है! जिसकी महिमा करता हो, उससे परोन्मुख क्यों होगा? और अंतर में चैतन्य की ओर कैसे आयेगा?

तेरा आत्मा तो आनंद का मावा है। माँसाहार के तीव्र पाप में डूबे हुए जीव कहते हैं कि मछली तो समुद्र का मावा है; अरे भाई, उसे अपने शरीर की ममता के कारण कितना कष्ट होता है, उसका तो जरा विचार कर! निर्दोष आनंद का मावा तो तेरे चैतन्यसमुद्र में है, जिसके स्वाद में किसी प्रकार की आकुलता नहीं है, जिसमें विकल्पों का प्रवेश नहीं है, ऐसे ज्ञान मावे के रस का रसिक एक बार तो हो। तेरे आत्मा को इस संसार में अन्य कोई भी शरण नहीं है। तीव्र पापभावों से जो जीवों की हिंसा कर रहे हैं, और मछली-अंडे इत्यादि पंचेन्द्रिय जीवों का भक्षण कर रहे हैं, वह तो नरक में जाने के लिये दौड़ लगा रहे हैं। नरक में कहीं भी दु:खों का पार नहीं, कम से कम दस हजार से लगाकर असंख्य वर्षों तक भयंकर दु:ख जीव नरकगति में भोगता है। ऐसे दु:खों से छूटने के लिए हे जीव! तू निर्दोष ज्ञानस्वभाव का रसिक बनकर उसका स्वाद ले।

आत्मा का लक्षण चेतना है। ज्ञान में ज्ञान का वेदन हो, उसका नाम 'ज्ञानचेतना' है और वही मोक्ष के कारणरूप भाव है; वह ज्ञानचेतना ही शुद्ध चेतना है और शुभाशुभ विकल्प करने

में या भोगने में रुका हुआ ज्ञान, वह अशुद्धचेतना है, उसको कर्मचेतना या कर्मफलचेतना कहा गया है, और वह संसार का कारण है। ज्ञानचेतना में चैतन्य की शांति और अतीन्द्रिय सुख है, तथा कर्मचेतना और कर्मफलचेतना इन दोनों अशुद्ध चेतना में दु:ख है, आकुलता है। परद्रव्यसन्मुख की जितनी भी वृत्ति उत्पन्न हो, वह सब अशुद्धचेतना है। शुद्धचेतना तो स्वद्रव्यसन्मुख होकर शुद्ध आत्मा को स्पर्शकर आनंद का अनुभव करती है—ऐसी शुद्धचेतना के बिना सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं हो सकता।

अनुकूल संयोगों में हर्ष मानकर और प्रतिकूल संयोगों में दु:ख मानकर उसके वेदन में ही रुक जाये, वह अशुद्ध कर्मफलचेतना है। चैतन्यतत्त्व राग से पृथक् है, उसके वेदन बिना सच्ची विरागता नहीं आती। राग के वेदन में जो रुक जावे, उसको वैरागी कौन कहेगा? धर्मी का वैराग्य तो ऐसा है कि जिसमें स्वभाव का उपभोग है, राग का उपभोग छूट गया है। चैतन्य का उत्साह छूटकर राग का उत्साह धर्मी को नहीं आता। राग से पार चैतन्य का स्वाद धर्मी ने चख लिया है, इसलिये जगत के सभी स्वाद उसे फीके-नीरस लगते हैं।

* पर के स्वाद का उपभोग तो कोई जीव करता नहीं है।

* अज्ञानी आत्मा के शुद्ध स्वाद को भूलकर विकार के अशुद्ध स्वाद को ही भोगता है; और मैंने पर का उपभोग किया—ऐसा भ्रम से मानता है।

* ज्ञानी पर से भिन्न और राग से पार चैतन्य के परम आनंद के स्वाद का अनुभव करता है।

सम्यक्त्वी को वस्तु का अनुभव किसप्रकार का है?—

वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पामे विश्राम;
रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव याको नाम।

ऐसा अनुभव गृहस्थ सम्यक्त्वी को होता है, नरक में भी सम्यक्त्वी को ऐसा अनुभव होता है—ऐसा अनुभव वह मूल मार्ग है, परंतु ऐसे मूलमार्ग की प्राप्ति के लिये अंतर में अति पात्रता, अधिक सत्समागम होना चाहिये—

सत् समागम से सच्चे मार्ग का श्रवण-मनन करके स्वयं अंतरशोध में लगे तो ऐसा अनुभव होता है और वह जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

वीरत्व

हे जीव ! आत्मा के लिये वीरता जागृत कर ! अरिहंत के भक्त शूरवीर ही होते हैं।

जीव को कोई भी कार्य करने के लिये जब वीरत्व (उत्साह) जागृत होता है, तब वह उसे किसी भी प्रकार पूरा करके ही रहता है। इसके लिये युद्ध का दृष्टांत देते हुए स्वामीजी ने रात्रिचर्चा में कहा था कि—जिसे शत्रु का नाश करने की शूरवीरता जागृत हुई हो, वह शूरवीर सैनिक अपने शरीर की, कुटुम्ब की चिंता न करके युद्ध में कूद पड़ता है।—हाथ-पाँव कट जायें, आँखें फूट जायें, फिर भी वह पीछे हटने का नाम नहीं लेता, अपने वीरत्व में किंचित् भी न्यूनता नहीं आने देता। अच्छा होकर फिर से लड़ने जाऊँगा, ऐसा कहता है ! उसीप्रकार यहाँ आत्मार्थी सैनिक को आत्मा की साधना का वीरत्व प्रगट हुआ है, मोह-शत्रु का नाश करने के लिये वीरत्व चढ़ा है, वह देह की, जगत की चिन्ता त्यागकर अंतर में कूद पड़ता है। प्रतिकूलताओं को गिनता नहीं, आत्मा को साधने में कहीं भी पीछे हटने का नाम नहीं लेता; शूरवीर योद्धा की भाँति सभी प्रकार के प्रयत्नों से आत्मा की साधना करता है; आत्मा को साधने का सच्चा वीरत्व प्रगट हो, तब आत्मा को तुरंत अवश्य ही साधा जा सकता है।

श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—वीरता हो तो वर्षों का काम दो घड़ी में किया जा सकता है। शूरवीरता को ग्रहण करके ज्ञानी के मार्ग पर प्रयाण करने से मोक्षनगरी निकट ही है। मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये शूरवीरता प्रगट करना चाहिये.... उल्लसित वीर्यवान परमतत्त्व की उपासना करने का मुख्य अधिकारी है।

अरे जीव ! तू शूरवीर हो... तेरी प्रभुता की असीम शक्ति तुझमें भरी हुई है... उसकी श्रद्धा का सिंहनाद करके आत्मा की साधना कर... कायरता त्याग करके वीरमार्ग में प्रयाण कर। अरिहंत के भक्त शूरवीर होते हैं !

एक क्षणभर के स्वानुभव से ज्ञानी के जो कर्म टूटते हैं, अज्ञानी के लाख उपाय करने पर भी इतने कर्म नहीं टूटते। सम्यक्त्व की व स्वानुभव की ऐसी कोई अचिंत्य महिमा है। यह समझकर, रे जीव ! इसकी आराधना में तू तत्पर हो।

तत्त्वचर्चा

तत्त्वरसिक जिज्ञासुओं को प्रिय 'दस प्रश्न-दस उत्तर' का यह विभाग पूज्य कानजीस्वामी के समीप हुई तत्त्वचर्चा पर से तथा शास्त्रों में से तैयार किया जाता है।

(६१) दीपावली पर्व क्यों मनाया जाता है ?

उत्तर—कार्तिक कृष्णा अमावस्या की अंधेरी रात्रि में जब महावीर भगवान मोक्ष पधारे, तब हजारों दीपमालाओं के जगमगाते प्रकाश में देव-मनुष्यों द्वारा मोक्ष कल्याणक-महोत्सव मनाया गया, उसमें मात्र वीतराग-विज्ञान ही आदरणीय था, उसी के स्मरणार्थ दीपावली आज भी भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इसप्रकार यह पर्व भगवान महावीर की मोक्षदशा से संबंधित है, इसकारण उस दिन उनका स्मरण करके विशेष भावना भाना चाहिये। मोक्ष महा आनंदरूप है, और इसका पर्व भी आनंदरूप ही है।

(६२) **प्रश्न**—जिस जीव ने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया हो, उसे पहिचानने का चिह्न क्या ?—कि जिससे लोग सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि का अंतर समझ सकें ?

उत्तर—केवल बाह्य क्रियाओं के चिह्न (लक्षण) से सम्यग्दृष्टि की पहिचान नहीं हो सकती। जिसको स्वयं को सम्यक्त्व का स्वरूप लक्ष में आया हो, वही सम्यग्दृष्टि को यथार्थरूप से पहिचान सकता है। सम्यग्दर्शन स्वयं अतीन्द्रिय वस्तु है, केवल इन्द्रियगम्य चिह्नों द्वारा उसे नहीं पहिचाना जा सकता। सम्यग्दृष्टि की वास्तविक पहिचान तभी हो सकती है, जब अपने में उस प्रकार के भाव प्रगट करे। सम्यग्दृष्टि की पहिचान का भाव भी अपूर्व ही है; यह भाव राग से पार है। जिसप्रकार आत्मा 'अलिंगग्रहण' अर्थात् अतीन्द्रिय ग्राह्य है, उसीप्रकार उसकी सम्यक्त्वादि दशा भी वास्तव में अलिंगग्रहण (अतीन्द्रियग्राह्य) है, केवल इन्द्रियगम्य ज्ञान के अनुमान द्वारा वह नहीं पहिचाना जा सकता। (इसका अति सुंदर वर्णन प्रवचनसार गाथा १७२ अलिंगग्रहण के बीस बोलों में से चौथे बोल में किया गया है)।

(६३) **प्रश्न**—जिसे सम्यग्दर्शन होनेवाला है—ऐसे जीव की दशा कैसी होती है ? सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् वह गृहस्थदशा में किस प्रकार रहता है ?

उत्तर—केवल आत्म-अनुभव का उत्साह, उसी का रंग, बारंबार उसी का मनन,

निजस्वरूप के अतिशय की महत्ता, और केवल उसी का प्रेम, अन्य सभी ओर से परिणामों को हटाकर मात्र आत्मस्वरूप में ही परिणामों को लगाने के लिये अंतर में उग्र प्रयत्न, प्रथम स्वरूप की अप्राप्ति का तीव्र खटका, उसकी प्राप्ति के लिये अपार जिज्ञासा, पश्चात् स्वरूप की आराधना (निकट भविष्य में ही उसकी प्राप्ति) का उल्लास - इसप्रकार अनेक प्रकार से अनेक बार गुरुदेव सम्यक्त्व की भूमिका स्वरूप समझाते हैं।

जिसको स्वरूप प्राप्त हो गया हो और अपूर्वता हुई, वह तो अपार गंभीरता से अंतर की गहराई में ही उतरता जाता है। ऐसे सम्यक्त्वी की परिणति में परम उदासीनता, जगत से अलिप्तता, आत्मा के आनंद की अचिंत्य मस्ती (अनुभव का अधूरा उत्तर अनुभव द्वारा ही पूरा होता है। अनुभव हो, तब उसका रहस्य समझ में आता है।)

(६४) प्रश्न—जैनधर्म निरीश्वरवादी है ? वह ईश्वर को नहीं मानता-यह सच है ?

उत्तर—नहीं; ईश्वर को सच्चे स्वरूप में जैनधर्म ही स्वीकार करता है। आत्मा का संपूर्ण ऐश्वर्य जो सर्वज्ञता है, वह जिस आत्मा को प्रगट हुई, वही आत्मा स्वयं ईश्वर है।—ऐसे सर्वज्ञ-ईश्वर को जैन ही वास्तविक रूप में जानकर स्वीकार करते हैं। अन्य लोग ईश्वर के सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचानते।

यह आत्मा भी अपनी आत्मशक्ति प्रगट करके परमेश्वर बन सकता है।

प्रत्येक आत्मा में अपनी-अपनी परमेश्वरता भरी हुई है।—इसप्रकार प्रत्येक आत्मा की ईश्वरता बतलाये, यह जैनधर्म की महत्वपूर्ण विशिष्टता है; जैन के अतिरिक्त अन्य कोई उसे नहीं जानते और न स्वीकार करते हैं।

जगत में सर्वज्ञता को प्राप्त ईश्वर-परमात्मा (सिद्ध) अनंत हैं, जैन लोग ही उनका स्वीकार करते हैं; दूसरे तो अनंत ईश्वर को जानते भी नहीं। इसलिये जैन ही सच्चे ईश्वरवादी हैं, शेष सभी निरीश्वरवादी हैं।

ईश्वर को जगत का कर्ता मानना, वह ईश्वरवाद नहीं है; परंतु सच्चे स्वरूप द्वारा ईश्वर को पहिचानना, वही सच्चा ईश्वरवाद है। ईश्वर सर्वज्ञ है, और ईश्वर जगत का अकर्ता है।

ईश्वर को जो जगतकर्ता मानता है, उसने ईश्वर के शुद्धस्वरूप को नहीं पहिचाना।

(६५) प्रश्न—पड़ा हुआ था भ्रांति में-कि आत्मा पर से अभिन्न है, जागा और जान लिया कि आत्मा सर्व से भिन्न है। इतना तो जाना—परंतु इसके बाद क्या ?

उत्तर—जाना ही नहीं, भाई, जिसने सचमुच इतना जान लिया हो, उसे भेदज्ञान हो जाता है, और 'इसके बाद क्या ?' ऐसा संदेहजनक प्रश्न उसे नहीं उठता। स्व-पर की भिन्नता जिसने यथार्थ जान ली, उसकी परिणति स्व की ओर जाती है, अतीन्द्रिय आनंद का उसे अनुभव होता है, तथा अब सादि-अनंत यही करना है - ऐसी नि:शंकता होती है। संपूर्ण वीतराग हो, वही सर्वज्ञ परमेश्वर होता है।

(६६) प्रश्न—क्रोधादि विभावपर्याय में तो परनिमित्त होता है, परंतु स्वभावरूप निर्मल पर्याय में क्या पर निमित्त होता है ?

उत्तर—हाँ, निर्मल पर्याय में भी निमित्त होता है। जैसे—देव-गुरु निमित्त, काल निमित्त, देहादि निमित्त, जिनवाणी इत्यादि निमित्त होते हैं। कार्य तो निमित्त से निरपेक्षरूप से होता है, परंतु निमित्त का निमित्तरूप से अस्तित्व होता है। इतना सत्य है कि विभावपर्याय में जैसे कर्म का उदय निमित्त है, उसीप्रकार शुद्धपर्याय में कर्म निमित्त नहीं है, तथा उस पर्याय में पर का आश्रय भी नहीं है, इसलिये उसे निरपेक्ष कहा जाता है। परंतु यह बात नहीं है कि—परवस्तु उसमें निमित्त भी न हो। सिद्ध भगवान को भी केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त हैं। परवस्तु का निमित्त होना कोई दोष का कारण नहीं है।

(६७) प्रश्न—तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि कितने बार छूटती है ?

उत्तर—प्रात:काल, मध्याह्न, सायंकाल एवं अर्धरात्रि इस प्रकार चारों समय छह-छह घड़ी भगवान की वाणी छूटती है; इसके अतिरिक्त किसी समय गणधरादि उत्तम पुरुषों के प्रश्नानुसार भी दिव्यध्वनि छूटती है।—उस ध्वनि का श्रवण करते हुए अनेक जीव स्वोन्मुख होकर सम्यक्त्वादि की साधना करते हैं।

(६८) प्रश्न—महाविदेहक्षेत्र में कौन सा धर्म है ?

उत्तर—वहाँ प्रगटरूप तो शुद्ध दिगम्बर जैनधर्म ही होता है; अंदर अभिप्राय में भले ही मिथ्या अभिप्रायवाले जीव हों, परंतु प्रगट में तो जैनधर्म का ही पालन होता है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के मत, उसके मंदिर या उसके गुरुओं का वहाँ अस्तित्व नहीं है। वहाँ कम से कम बीस तीर्थंकर भगवंत तो सदैव विद्यमान ही रहते हैं।

धर्मकाल अहो वर्ते धर्मक्षेत्र विदेह में,
बीस बीस जहाँ गर्जे धोरी धर्म-प्रवर्तका।

इन सीमंधरादि तीर्थंकर भगवान को नमस्कार हो !

(६९) प्रश्न—भेदज्ञान की रीति कठिन लगती है तो क्या करें ?

उत्तर—उत्साहपूर्वक बारंबार दृढ़ता से अति प्रेमसहित उसका अभ्यास करने से वह अवश्य सरल बन जाता है। कठिन और सूक्ष्म तो है परंतु अशक्य नहीं; इससे सही प्रयत्न द्वारा वह अवश्य समझ में आ सकता है। भेदविज्ञान प्राप्त कर-करके अनंत जीवों ने मुक्ति को प्राप्त किया है, वे जीव भी अपने जैसे ही थे, इसलिये उन्होंने जो किया, वह हमसे भी हो सकता है। सच्ची लगन से उसका अभ्यास करना चाहिये।

राग और ज्ञान के मध्य सूक्ष्म संधि है, वे संधिरहित—एकरूप हो गये हों, ऐसा नहीं है; इसलिये प्रज्ञाछैनी के अभ्यास द्वारा उन्हें भिन्न-भिन्न करके शुद्ध ज्ञान का अनुभव किया जा सकता है

(७०) प्रश्न—किसी जीव को सीधा क्षायिक-सम्यक्त्व होता है ?

उत्तर—क्षयोपशम में से ही क्षायिक-सम्यक्त्व होता है; अनादि काल के मिथ्यादृष्टि जीव को पहले उपशम-सम्यक्त्व ही होता है; पश्चात् क्षयोपशम सहित ही क्षायिक होता है। अर्थात् तीनों प्रकार के सम्यक्त्व को हरेक मोक्षगामी जीव अवश्य प्राप्त करता है।

आचार्यकल्प पंडितप्रवर श्री टोडरमलजीकृत

मोक्षमार्गप्रकाशक में से

स्वतंत्र वस्तुस्वभाव दर्शक कुछ वचनामृत-

[कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्य की अवस्था में कुछ भी कर सकता नहीं, अत: जैनधर्म में वस्तुस्वरूप से देखा जाये तो पर में कर्तृत्व का निषेध है।] 'अनादिनिधन वस्तुयें भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नहीं है; कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। उन्हें परिणमित कराना चाहे, वह कोई (सुख का) उपाय नहीं है, यह तो मिथ्यादर्शन ही है।'

(दे० पृ० ५२)

'सहज ही ऐसा आयुकर्म का निमित्त है; दूसरा कोई उत्पन्न करनेवाला, क्षय करनेवाला या रक्षा करनेवाला है नहीं - ऐसा निश्चय करना।' (पृष्ठ ४२)

× × ×

'द्रव्यलिंगी से स्थूल अन्यथापन तो है नहीं, परंतु सूक्ष्म अन्यथापन है, वह सम्यग्दृष्टि को भासित होता है।'

'जीव पुद्गलादि के भेदों व उनके वर्णादि भेदों को जानता है, परंतु अध्यात्म शास्त्रों में भेदविज्ञान के कारणभूत वा वीतरागदशा होने के कारणभूत जैसा निरूपण किया है, वैसा जानता नहीं। अपने को आपरूप जानकर पर का अंश भी न मिलाना तथा अपना अंश भी पर में नहीं मिलाना, (अज्ञानी) ऐसा सच्चा श्रद्धान करता नहीं।'

'प्रशस्त राग भी बन्ध का ही कारण है, हेय है; यदि श्रद्धान में उसे मोक्षमार्ग जाने तो वह मिथ्यादृष्टि ही है।'

'शुभाशुभभावों में घातिकर्मों का बन्ध तो निरंतर होता है। अत: उसे भला-बुरा जानना, वही मिथ्या श्रद्धान है।'

× × ×

एक क्षण में आत्मा को जानने की

तीव्र जिज्ञासा और उसका उपाय

एक क्षण में मोह टूटकर आत्मस्वरूप प्रकाशित हो – ऐसे प्रयोजनभूत ज्ञान का उपदेश शिष्य जिज्ञासापूर्वक चाहता है; उसके प्रयोजनभूत ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व का उपदेश देते हुए कहते हैं – हे वत्स! तू अपने आत्मा को ज्ञान के साथ एकमेक जान और वह अन्य समस्त भावों से भिन्न है, ऐसा तू मान। इसप्रकार रागरहित स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा अपना आत्मा तुझे तुरंत ही ज्ञात हो जायेगा।

(परमात्मप्रकाश, गाथा १०४ से १०७)

प्रभाकर भट्ट अर्थात् आत्मा का जिज्ञासु शिष्य तीव्र जिज्ञासा से विनयपूर्वक पूछता है कि हे स्वामी! जिस ज्ञान के द्वारा एक क्षण में आत्मा का ज्ञान हो जाये और आत्मा का अनुभव हो—ऐसे ज्ञान का उपदेश दीजिये। शरीर द्वारा-इन्द्रियों द्वारा, राग द्वारा आत्मा पहिचाना जा सकता है, ऐसा तो मानता नहीं; आत्मा अपने ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है, ऐसा लक्ष में लेकर पूछता है कि हे स्वामी! अन्य शुभाशुभ विकल्पों से मुझे क्या प्रयोजन? मुझे तो ऐसा ज्ञान ही बतलाओ कि जिस ज्ञान द्वारा शीघ्र आत्मप्राप्ति हो जाये। आत्मा जिस उपाय से जाना जा सकता हो, उस उपाय का ही प्रयोजन है; अन्य कोई प्रयोजन नहीं। इसप्रकार की पात्रता प्रगट करके शिष्य प्रश्न करता है।

आत्मा को जानने के लिये कहीं राग का अवलंबन बतलाओ-ऐसा नहीं कहता, परंतु जिस रागरहित ज्ञान से आत्मा का स्वसंवेदन हो, वह ज्ञान किसप्रकार प्रगट हो – वह मुझे बतलाइये.... शीघ्र ही वह ज्ञान प्रगट हो, ऐसा मुझे बताओ। मुझे परलक्ष का प्रयोजन नहीं है। मुझे तो जिस ज्ञान द्वारा मेरे आत्मा का वीतरागी स्वसंवेदन प्रगट होकर आनंद का अनुभव हो – ऐसा ज्ञान करना है। मैं अपने आत्मा को पहिचान लूँ – बस यही प्रयोजन है। शुद्धबुद्ध-एकस्वभावी आत्मा है, उसका ज्ञान प्राप्त करूँ कि जिससे मेरे भवभ्रमण का अंत आ जाये। देखो, संसार संबंधी कुछ भी प्रयोजन जिसके मन में नहीं, मान-प्रतिष्ठा या बाह्य जानकारी की जिसको अभिलाषा नहीं, एक ही जिज्ञासा है कि मुझे मेरा आत्मा किसप्रकार पहिचानने में आवे – ऐसी बात बतलाओ; ऐसा ज्ञान मुझे प्रकाशित करो कि जिस ज्ञानप्रकाश से मेरा शुद्धबुद्ध

आत्मा पहिचानने में आये, एक क्षण में तुरंत जाना जा सके – ऐसा उत्तम ज्ञान मुझे दो। इसके अतिरिक्त मुझे अन्य किसी प्रकार के विकल्पों से काम नहीं है, क्योंकि इन विकल्पों से आत्मा नहीं जाना जा सकता।

देखो, इतनी तो भूमिका शुद्ध बनाकर आत्मा को जानने का प्रश्न किया है। समझनेवाले शिष्य को कितनी तीव्र लालसा होती है, वह यहाँ बताया है। 'काम एक आत्मार्थ का, अन्य नहीं मन रोग'—जिस स्वसंवेदन-पर्याय में आत्मा ज्ञात हो, ऐसा स्वसंवेदन किसप्रकार प्रगट हो! इसप्रकार शिष्य की अभिलाषा है। 'एक क्षण में आत्मा प्रगट हो जाये' इस वाक्य से जिज्ञासा की तीव्रता को प्रगट की है। जिसमें शुद्ध आत्मा का स्वसंवेदन प्रगट हो, वही ज्ञान उपादेय है और ऐसा ज्ञान प्राप्त करने की प्रार्थना शिष्य ने की है।

अब श्रीगुरु उसे ऐसे ज्ञान का स्वरूप बतलाते हैं-कि हे शिष्य! हे वत्स! आत्मा असंख्यप्रदेशी वस्तु है, वह असंख्य प्रदेशों में ज्ञान-सुख इत्यादि से परिपूर्ण है। इस शरीर -प्रमाण क्षेत्र में असंख्यप्रदेशी आत्मा शुद्ध बुद्ध ज्ञायकभाव से परिपूर्ण विराजमान है, और स्वसंवेदन ज्ञानरूप पर्याय, वह उसका स्वकाल है।

- स्वसंवेदन पर्याय, वह उसका स्वकाल।
- आत्मद्रव्य।
- असंख्य प्रदेशी उसका क्षेत्र।
- शुद्ध बुद्ध ज्ञायकपना यह उसका भाव।

—ऐसे स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टय से आत्मा को जान। ऐसे आत्मा को वीतराग स्व-संवेदन से तू पहिचान। इन स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से बाहर आत्मा नहीं है। आत्मा को जानने के लिये तेरे इस असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में जो स्वभाव भरा हुआ है, उसी में तू देख। ज्ञान की शक्ति लोकालोक सभी को जानने की है, परंतु ज्ञान का क्षेत्र असंख्यप्रदेशी है। तेरे स्वक्षेत्र में ही तेरा पूर्ण स्वरूप समा जाता है, कहीं भी बाहर देखने का काम नहीं रहता। शरीर जितने क्षेत्र में ही आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिपूर्ण है। जितना आत्मा का क्षेत्र है, उतने ही क्षेत्र में उसका अनंत स्वभाव भरा हुआ है। ज्ञान-आनंद-श्रद्धा-अस्तित्व प्रभुता इत्यादि सर्व गुण असंख्यप्रदेशी स्वक्षेत्र में भरे हुए हैं।

मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय और केवलज्ञान—इन पाँचों ज्ञानपर्यायों से आत्मा अभिन्न

है, इस ज्ञान से आत्मा पृथक् नहीं है। देह से, राग से पृथक् है परंतु ज्ञान से आत्मा पृथक् नहीं है; इसतरह ज्ञानपर्याय को राग से पृथक् करके और आत्मा के साथ एकरूप बनाकर आत्मा को जान। असंख्य योजन दूर की वस्तु को ज्ञान जानता है, इसका मतलब यह नहीं कि ज्ञान आत्मा से पृथक् होकर कहीं बाहर चला गया; आत्मा के साथ अभिन्न रहकर ही ज्ञान जानता है। अधिक ज्ञान प्रगट हो जाये तो भी आत्मा में ही रहता है। अनंत अलोक को जाननेवाला ज्ञान भी इतने असंख्य प्रदेशी मर्यादित क्षेत्र में ही समा जाता है। ज्ञान आत्मा में किंचित् भी दूर नहीं जाता। इसलिये ज्ञान उपयोग को अंतरोन्मुख करके आत्मा के साथ तन्मय कर, इसलिये उस ज्ञान में उसी समय आत्मा का अनुभव होगा। अनंत क्षेत्र का ज्ञान असंख्यप्रदेश में ही समा जाता है, अनंत पदार्थों का ज्ञान असंख्यप्रदेशी एक आत्मा की एक समय की पर्याय में आ जाता है। तेरे गुण और तेरी पर्याय तेरे स्वक्षेत्र में है। तेरी सभी पर्याया में तेरा ज्ञानस्वभावी आत्मा तन्मय है, पृथक् नहीं है। उसके सामने दृष्टि कर, उसमें ज्ञान उपयोग को लगा, तो एक क्षण में तुझे अपने आत्मा की प्रतीति हो जायेगी और मोह टूट जायेगा। स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा ऐसे आत्मा का अनुभव करेगा, तब आत्मा को पहिचाना—ऐसा कहा जायेगा और तभी मोक्षमार्ग प्रारंभ होगा। ज्ञान कम हो अथवा अधिक – उसका क्षेत्र तो आत्मा के असंख्य प्रदेश में ही है। ज्ञान की वृद्धि होने से क्षेत्र की वृद्धि हो जाये, ऐसा नहीं होता। लोक के (३४३ घन राजु प्रमाण) जितने असंख्य प्रदेश हैं, उतने ही असंख्य प्रदेश प्रत्येक आत्मा के हैं; भले ही संकुचित होकर अल्प क्षेत्र में शरीरप्रमाण रहे हुए हों, तथापि आत्मा के प्रदेशों की संख्या में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। प्रदेश तो इतने के इतने ही हैं; और असंख्य प्रदेश अनंत गुणों से परिपूर्ण हैं। ऐसे आत्मा को जो स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा जानता है, वह जीव ज्ञान से अभिन्न है; इसलिये वह आत्मा स्वयं अपने को ज्ञान से अभिन्न अनुभव करता हुआ स्वयं ज्ञान ही है। ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्यान में उपादेय है, ऐसे आत्मा में उपयोग लगाने से निर्विकल्प ध्यान होता है, और ऐसे ध्यान में ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होते हैं। शुभ विकल्पों में लीन होने से आत्मा नहीं जाना जा सकता। शुभाशुभ विकल्प रहित होकर ज्ञान को अंतर स्वरूप में एकाग्र करने से आत्मा जाना जा सकता है। जो ऐसा स्वसंवेदन ज्ञान है, वही संवर-निर्जरा है, वही मोक्ष का उपाय है। बाह्य विषयों की ओर ज्ञान जाता था, वहाँ आस्रव-बंध थे; विषयों से पृथक् होकर ज्ञान, स्वभाव की ओर ढला, उस ज्ञान में संवर-निर्जरा है। स्वभावोन्मुख होकर शुद्ध आत्मा को जाना और उसमें

तन्मयरूप परिणमित हुआ, वह स्वसमय है। परभाव को जानते हुए उसमें तन्मय होकर वह पर समय है। स्वसमयरूप होकर तू अपने आत्मा को जान। इस प्रकार श्रीगुरु ने शिष्य को एक क्षण में आत्मा को पहिचानने की रीति बतलाई।

रागादि भाव बाह्य तत्त्व है, वह आत्मा का अंतरस्वरूप नहीं है। ज्ञान आत्मा का अंतर्तत्त्व है, ज्ञानपरिणति आत्मा में अभेद होती जाती है। राग कहीं आत्मा में अभेद नहीं होता। इसप्रकार निर्मल ज्ञानपरिणति के साथ अभेद आत्मा ही परमार्थ है। ऐसे परमार्थ स्वसंवेदन द्वारा आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है। इसप्रकार आत्मा से अभिन्न ऐसा स्वसंवेदन ज्ञान ही आत्मा को जानने का साधन है। ऐसे साधन द्वारा तू आत्मा को जान।

एक क्षण में मोह टूटकर आत्मस्वरूप प्रकाशित हो जाये—ऐसे प्रयोजनभूत ज्ञान का उपदेश शिष्य ने जिज्ञासासहित माँगा था; उसे प्रयोजनभूत ऐसे शुद्ध आत्मतत्त्व का उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे वत्स! तू अपने आत्मा को ज्ञान के साथ एकमेक तथा समस्त अन्य परभावों से भिन्न जान। इसप्रकार रागरहित स्वसंवेदन से तेरा आत्मा तुझे तुरंत ही ज्ञात होगा।

तेरा स्वरूप तो ज्ञान है; ज्ञानस्वरूप आत्मा से बाहर जो भी शुभ अथवा अशुभभाव है, वह तेरा स्वरूप नहीं है; इसलिये उन सर्व परभावों को छोड़कर एवं ज्ञानस्वरूप में तन्मय होकर अपने आत्मा को जान। परभावों के अनेक प्रकार हैं, उन सभी से पृथक् ज्ञानस्वभाव एक है।- ऐसे एक स्वभाव के अनुभव से तेरा स्वरूप प्रकाशित होगा। ऐसे आत्मा के अनुभव में किसी विकल्प का सहारा नहीं है।

शिष्य के प्रश्न में भी ऐसा ही लक्ष था कि मेरे तो परम ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के भावों से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, अर्थात् विकल्प द्वारा-राग द्वारा स्वरूप की प्राप्ति होगी-ऐसी मान्यता तो उसके लक्ष से दूर हो चुकी थी। केवल परम ज्ञान का ही लक्ष था, इसलिये केवल परम ज्ञान के उपदेश की ही उसने माँग की थी कि हे प्रभो! जिसके जानने से शीघ्र मेरा आत्मा मेरे अनुभव में आ जाये - ऐसे परम ज्ञान का उपदेश मुझे कृपा करके दीजिये।

उसे यहाँ पर सीधा उपाय समझाते हैं कि ज्ञान के साथ आत्मा एकमेक है, इसलिये ज्ञान में रहकर आत्मा को जान। विकल्पों में रहकर आत्मा नहीं जाना जा सकता। निर्मल परिणतिरूप जो शुद्ध ज्ञान है, उसी में आत्मा ज्ञात होगा; अर्थात् ज्ञानपर्याय अंतर्मुख होकर विकल्प से हटकर आत्मा में एकरूप हुई, तब उस पर्याय में परमात्मतत्त्व प्रगट हुआ और तब आत्मा को जाना।

पुनः-पुनः कहते हैं कि हे प्रभाकर भट्ट ! हे जिज्ञासु शिष्य ! आत्मा नियम से ज्ञानगोचर है, क्योंकि ज्ञान ही आत्मा को जानता है। इसलिये तू विषय कषायों के अशुभभावों को छोड़कर तथा पुण्य के शुभभावों को भी हटाकर ज्ञान द्वारा निज आत्मा को जान।

'ज्ञान' वास्तव में उसी को कहा गया है जो विकल्पों से पृथक् रहकर आत्मस्वरूप में लगा है। विकल्प, वह ज्ञान नहीं है, वह कहीं आत्मा को जानने का कार्य नहीं कर सकता। विकल्प की जाति आत्मा से भिन्न है, वह आत्मा को कैसे जान सकेगा ? आत्मा की जाति तो ज्ञान है; इसलिये ज्ञान ही आत्मा को जान सकता है।

आत्मा का स्वरूप तो ज्ञान है। ज्ञानस्वरूप की प्राप्ति तो ज्ञान द्वारा होती है, अज्ञान द्वारा नहीं हो सकती। विकल्प भी अज्ञान की जाति के हैं, ज्ञान की जाति के नहीं; परंतु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि जिस जीव में विकल्प हों, वह अज्ञानी है। ज्ञानी को भी विकल्प होते हैं, परंतु ज्ञानी उन विकल्पों को ज्ञान के साथ मिलाता नहीं, विकल्पों को ज्ञान से पृथक् ही रखता है; विकल्प की जाति और ज्ञान की जाति, उन दोनों को पृथक्-पृथक् जानता है। जो जीव विकल्पों को ज्ञान के साथ मिलाकर एकमेक करता है, वह जीव अज्ञानी है; वह विकल्प को साधन मानता है, परंतु विकल्प से भिन्न ज्ञान को जानता नहीं।

अहो, यह ज्ञानस्वरूप निजपद है, वह ज्ञानगुण द्वारा अर्थात् सम्यग्ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है। परंतु सम्यग्ज्ञानरहित जीव अन्य किसी भी प्रकार के उपाय द्वारा निजपद को प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिये हे जीव ! अगर तुझे अपने स्वरूप प्राप्ति की अभिलाषा हो तो ज्ञान द्वारा तू उसे प्राप्त कर, ज्ञानपरिणति को अंतर की गहराई में उतारकर आत्मा को अनुभव में ले। विकल्प तो ऊपर के ऊपर ही रहनेवाले हैं, वह स्वभाव की गहराई में नही उतर सकते। ज्ञानपर्याय द्वारा स्वभाव की गहराई में उतरकर उसकी थाह ले, तो उसी क्षण तुझे अपने स्वरूप की प्राप्ति होगी... और अपने परम अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद भी तुझे तुरंत ही अनुभव में आ जायेगा।

इसप्रकार श्रीगुरु ने कृपा करके एकक्षण में आत्मा को पहिचानने की रीति बतलायी।

अज्ञानी का अपराध

[अशुद्धता से छूटकर शुद्ध होने का अवसर कब आता है ?]

(समयसार कलश-टीका प्रवचन : कलश २११)

जिसे अपनी शुद्ध चैतन्यवस्तु का अनुभव नहीं है, वह अपने अज्ञान से रागादि अशुद्ध भाव का ही अनुभवन करता है तथा परद्रव्य मुझे विकार कराता है- ऐसा मानता है-वह जीव शुद्ध बोध से रहित एवं सम्यक्त्व से शून्य है। ऐसे अज्ञानी जीव का क्या अपराध है और उस अपराध का क्या फल है - वह बतलाकर आचार्यदेव करुणापूर्वक जीवों को उस अपराध से छुड़ाते हैं।

अरे जीव! यदि परद्रव्य ही बलात्कारपूर्वक अशुद्धता कराता हो तो उस अशुद्धता से छूटने का अवसर कब आवेगा ?—क्योंकि परद्रव्य तो जगत में सदा है; यदि वह विकार कराता हो, तब तो निरंतर विकार होता ही रहे और विकार से छूटने का अवसर ही कभी प्राप्त न हो।—इसलिये तेरा शुद्ध या अशुद्ध परिणमन तुझसे ही है—ऐसा तू जान ले तो शुद्ध द्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट करके अशुद्धता को दूर करने का अवसर तुझे अवश्य आयेगा।

तू अपनी स्वतंत्रता जान कि मैं बाह्योन्मुख हुआ, इसलिये मुझे अशुद्धता हुई; और मैं अंतरोन्मुख होऊँ तो मुझे शुद्धता हो। मेरी अशुद्धता में या शुद्धता में परद्रव्य का किंचित्मात्र हाथ नहीं है। - ऐसी स्वतंत्रता को जानकर स्वसन्मुख होने से शुद्धता का अवसर आता है।

परंतु जो जीव अपनी स्ववस्तु को नहीं जानता, जिसका समस्त ज्ञान विपरीत है, जिसके सम्यक्त्वचक्षु मुँद गये हैं, वह जीव मोहशत्रु की सेना को नहीं जीत सकता।—उसका अपराध क्या ? कि वह कर्मादि परद्रव्यों को विकार का कर्ता मानता है, वह उसका महान अपराध है। अपनी पर्याय को वह नहीं जानता।

पर के कारण विकार होता है—ऐसा माननेवाले जीव को अपराधी कहा है;—तो उस अपराध का फल क्या ? कि अनंत संसाररूपी कारावास; इसलिये कहा है कि परद्रव्य जीव को अशुद्धता कराता है—ऐसा माननेवाला जीव राशि अनंत संसारी है; वह संसार-समुद्र को पार

नहीं कर सकता। स्वरूप परिणाम का उसे अवकाश ही नहीं है; फिर उसकी अशुद्धता कहाँ से दूर होगी ?

इस कलश के भाव की स्पष्टता करते हुए श्री पंडित बनारसीदासजी 'नाटक समयसार' में कहते हैं कि—

कोऊ मूरख यों कहे, रागदोष परिनाम।
पुद्गल की जोरावरी, वरते आतमराम॥६२॥
ज्यों ज्यों पुद्गल बल करे, धरि धरि कर्मज भेष।
रागदोष को परिणमन त्यों त्यों होय विशेष॥६३॥

पुद्गलकर्म जीव को राग-द्वेष कराते हैं—ऐसी असत्य मान्यतावाले अज्ञानी को सत्यमार्ग का उपदेश देते हुए कहते हैं कि—

इह विधि जो विपरीत पख, गहे सद्दहे कोय।
सो नर राग विरोधसों, कबहुँ भिन्न न होय॥६४॥
सुगुरु कहे जग में रहे, पुद्गल संग सदीव,
सहज शुद्ध परिणमन को, अवसर लहे न जीव॥६५॥
तातें चिद्भावन विषें समरथ चेतन राव।
राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यक् में शिवभाग॥६६॥

यह चेतन राजा स्वयं ही अपने चैतन्यभावों को करने में समर्थ है; मिथ्यात्वभाव में तो वह राग-द्वेष परिणाम करता है और सम्यक्त्व भाव में वह मोक्षमार्ग करता है।—इसप्रकार जीव स्वयं ही अपने भाव का कर्ता है।

इससे पूर्व (६१वें छंद में) शिष्य ने पूछा था कि हे स्वामी! इन राग-द्वेष का मूल प्रेरक कौन है ? क्या पुद्गल कर्म, इन्द्रियविषय या धन, मकान, परिजन—यह कोई जीव को राग-द्वेष कराते हैं ? वहाँ उत्तर में गुरु ने कहा है कि—

गुरु कहे छहों द्रव्य अपने अपने रूप,
सबनि को सदा असहाई परिणमन है;
कोऊ दरब काहूँ को न प्रेरक कदाच तातें,
राग-दोष-मोह मृषा मदिरा अचौन है॥६१॥

भाई, कोई परद्रव्य तुझे विकार नहीं कराते; तेरा मिथ्यात्वरूप मोहभाव ही राग-द्वेष का मूल कारण है।

वह शुद्ध आत्मतत्त्व स्वभाव से तो ज्ञान-आनंद-सुख आदि गुणों से भरपूर है, अशुद्धता की उत्पत्ति उसके स्वभाव में नहीं होती; तो पर्याय में अशुद्धता होती है, वह कैसे होती है ?—उसकी यह बात है। उस अशुद्धतारूप जीव स्वयं अपनी पर्याय में अशुद्धरूप परिणमित होने की शक्ति से ही परिणमित हुआ है; स्वयं अपने शुद्धस्वभाव के अनुभवरूप परिणमित न होकर मोहरूप परिणमित हुआ है; किसी दूसरे ने उसे परिणमित नहीं किया है। जो जीवराशि अर्थात् जो जीव समूह ऐसा मानता है कि परद्रव्य मुझे अशुद्धता कराता है, वह जीवराशि मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी है।

अनंत संसारी क्यों कहा ?—क्योंकि जब तक परद्रव्य अशुद्धता कराता है—ऐसा मानता है, तब तक वह संसार में ही भटकता है। परद्रव्य तो जगत में अनंत काल तक रहनेवाले हैं, यदि परद्रव्य विकार कराये, तब तो अनंत काल तक विकार होता ही रहेगा; विकार से छूटने का अवसर ही नहीं आयेगा। इसलिये जो परद्रव्य से अशुद्धता होना मानता है, उसकी अशुद्धता तो अनंत काल में भी दूर नहीं होगी और संसार का अंत नहीं आयेगा। यह विपरीत मान्यता छोड़े, तभी अशुद्धता छूटेगी और तभी संसार का अंत आयेगा। इसलिये संत करुणा करके समझाते हैं कि—भाई, अपनी भूल तूने की है; परद्रव्य में ऐसी शक्ति नहीं है कि तुझे दोष कराये, और तेरा भी ऐसा स्वरूप नहीं है कि पर से तुझमें दोष हो जाये। अरे, तू इस अनंत संसार के दु:ख में छटपटा रहा है और हम तुझे इससे छूटने का उपाय बतलाते हैं—उसे लक्ष में ले। अपनी दशा में अशुद्धता मैंने अपनी ही भूल से की है; वह भूल क्षणिक है और मेरा शुद्धस्वभाव त्रिकाल है—इसप्रकार शुद्धस्वभाव को लक्ष में लेने पर पर्याय की क्षणिक भूल दूर होती है और स्वभाव के आश्रय से शुद्धता बढ़ती जाती है।

भाई, तुझे भूल सुधारकर अच्छा होना है न ?—हाँ; तो अच्छा अर्थात् शुद्ध ऐसा तेरा स्वभाव है; उसे तू लक्ष में ले तो स्वभाव के आश्रय से अच्छाई अर्थात् शुद्धता होगी।

अज्ञानी अपने शुद्धस्वभाव से तो अनभिज्ञ है और पर्याय में जो अशुद्धता होने की शक्ति है, उससे भी अनजान है। अशुद्धता की शक्ति अपनी पर्याय की है, उसके बदले, परसंयोग अशुद्धता कराता है—ऐसी अज्ञानी की मान्यता है। 'पर्याय की शक्ति' अर्थात् पर्याय की उस समय की योग्यता। पर्याय में अशुद्धता की शक्ति कही, इसलिये कहीं वह अशुद्धता जीव का नित्यस्वभाव नहीं हो जाता, क्योंकि पर्याय स्वयं एकसमय की है। अब यहाँ यह बतलाना है

कि अपनी पर्याय की एकसमय की स्वतंत्र अशुद्ध शक्ति को भी जो नहीं जानता, वह त्रैकालिक स्वभाव की शुद्धता के सामर्थ्य को कहाँ से जानेगा ?—उसे न तो द्रव्य की खबर है, न पर्याय की खबर है, और न पर की खबर है। परद्रव्य बेचारा उसके भाव में परिणमित हो रहा है, वह इस जीव को किंचित्मात्र विकार नहीं कराता; तथापि अज्ञानी उस पर दोषारोपण करता है कि तूने मुझमें अशुद्धता की है !—अज्ञानी का महान अपराध है। शास्त्र पठन में से जो स्वाश्रय का आशय निकालना चाहिये, वह अज्ञानी को नहीं आता और अपनी विपरीत दृष्टि से शास्त्रों का आशय भी विपरीत ही समझता है।

भाई, अपने दोष मैंने किये हैं—ऐसा समझ तो तुझे वे दोष दूर करने का खटका रहेगा। परंतु दोष परद्रव्य ही कराता है—ऐसा मानेगा तो उन्हें दूर करने की दरकार कैसे रहेगी ? परद्रव्य ही तुझे दोष कराते हों—तो तुझमें कोई पुरुषार्थ है या नहीं ? विकार से बचने और सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भाव करने का पुरुषार्थ तुझमें है या नहीं ? विपरीतता या सच्ची दृष्टि, शुद्धता या अशुद्धता—यह दोनों मेरे ही पुरुषार्थ के कार्य हैं—ऐसा जो समझे, वह स्व पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धता को दूर करके शुद्धता करेगा; परंतु अपने पुरुषार्थ को ही जो स्वीकार न करे, उसे अशुद्धता दूर करके शुद्धता का अवसर ही कहाँ से आवेगा ? अनुकूल या प्रतिकूल संयोगों के ढेर आत्मा को डिगा नहीं सकते। अनुकूलता के ढेर उसे शुद्धता में कोई सहायता करें अथवा राग करायें—ऐसा नहीं है; तथा प्रतिकूलता के ढेर उसे शुद्धता से डिगा दें या कोई द्वेष करायें—ऐसा नहीं है; अशुद्धता या शुद्धता में आत्मा स्वतन्त्र हैं ?

भाई, यदि तेरी शुद्धता की तैयारी हो तो जगत में संत मौजूद ही हैं। तैयारीवाले पात्र जीव को ज्ञानी-धर्मात्मा का योग मिल ही जाता है। ज्ञानी नहीं मिले, इसलिये भटकता फिरा; इसका अर्थ ऐसा है कि स्वयं पात्रता प्रगट नहीं की, इसलिये भटकता फिरा, अपनी पात्रता के बिना ज्ञानी को भी सच्ची पहिचान नहीं होती। जीव की अपनी पात्रता के बिना ज्ञानी को भी उसका निमित्तकारण कैसे माना जाये ? इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव ! अपने भाव में तू अपनी स्वतंत्रता को जान और स्वभाव की ओर का प्रयत्न कर तो तेरी अशुद्धता दूर हुए बिना नहीं रहेगी।

आत्मप्रतीति का सामर्थ्य

जो समस्त पापों को अर्ध-निमिष में भस्म कर देता है।

[परमात्मप्रकाश, गाथा ११४]

यदि कोई जीव मात्र अर्ध-निमिष भी परमात्मतत्त्व की प्रीति करे तो वह प्रीति समस्त पापसमूह को इसप्रकार भस्म कर देती है, जिसप्रकार अग्नि-कणिका लकड़ी के पर्वत को भस्म कर डालती है।—शुद्धात्मा की प्रीति का ऐसा महान सामर्थ्य जानकर हे जीव! तू उसकी प्रीति कर... और सदा उसकी भावना भा!

अर्ध-निमिष अर्थात् आँख बंद करके खोलने में जितना समय लगता है, उससे भी आधा समय। इतने समय तक भी जो जीव अंतर्मुख होकर इस परमात्मतत्त्व की प्रीति करता है, वह जीव ध्यानाग्नि द्वारा समस्त कर्मों को जला देता है। रुचि के बल से जहाँ क्षणमात्र भी स्वरूप का ध्यान किया, वहाँ अनंत कर्म जलकर भस्म हो जाते हैं। देखो, यह शुद्धात्मा के प्रेम की महिमा! शुभराग के प्रेम द्वारा अनंत काल से जो हाथ नहीं आया; वह शुद्धात्मा की प्रीति द्वारा पलक मारते ही हाथ आ जायेगा। जहाँ रुचि की दिशा पलटकर स्वद्रव्योन्मुख हुआ, वहाँ स्वतत्त्व में एकाग्रता द्वारा परम आनंद प्रगट होता है और क्षणमात्र में समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। स्वरूप की केलि में आनंद करते-करते अल्प काल में वह केवलज्ञान प्राप्त करेगा। चैतन्य की ऐसी अचिंत्य शक्ति है कि एक क्षण में केवलज्ञान प्राप्त कर ले! जिसकी एक क्षण की प्रीति में इतनी शक्ति है, उसके स्वभाव की महिमा की क्या बात?

जो अनंत काल में प्राप्त नहीं हुई, ऐसी आत्मा की ऋद्धि तुझे प्राप्त करना हो तो बाहर की समस्त ऋद्धि का तथा बाहरी जानकारी का गर्व छोड़कर चैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रीति कर! आत्मा तो अपार आनंद का निधान है; उसमें तो परम चैतन्यरस एवं आनंदरस भरा है। सोना बनाने की ऋद्धि का अथवा अन्य किसी ऋद्धि का इस चैतन्यऋद्धि के समक्ष कोई मूल्य नहीं है। जिसे ऐसी बाह्य ऋद्धि का, शास्त्र रचना का अथवा वक्तृत्व—कवित्व का अभिमान है और उसके द्वारा अपनी महत्ता भासित होती है, उसे चैतन्य की महत्ता भासित नहीं होती; इसलिये उसे आत्मा की सच्ची प्रीति जागृत नहीं होती। भाई, यदि तुझे आत्मा की प्रीति करना हो तो अन्य समस्त ऋद्धि की या बाह्य चतुराई की प्रीति छोड़ और निर्विकल्प समाधि द्वारा अंतर में

अपने आत्मतत्त्व को देखकर उसकी प्रीति कर... अंतर में दृष्टि करते ही तुझे आठों कर्मों से रहित अपना शुद्धस्वरूप दिखायी देगा; उसकी प्रीति द्वारा तेरा मोह क्षण में छूट जायेगा; कर्म क्षण में भस्म हो जायेंगे और परम आनंद का अनुभव होगा। आत्मा के ध्यान में एकाग्र होने से अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान होगा।

आत्मा की प्रीति का ऐसा उत्तम फल जानकर हे जीव! अन्य समस्त चिंताओं को छोड़कर तू आत्मस्वरूप का चिंतन कर। अरे, मेरे आनंदस्वरूप में यह क्लेश कैसा? यह चार गति के दु:ख क्यों?—इसप्रकार यदि तुझे चार गति के दु:खों का डर लगा हो और आत्मिक आनंद की जिज्ञासा जागृत हुई हो तो लोकसंबंधी समस्त चिंता छोड़कर अपने आत्मस्वरूप का चिंतन कर... अपनी अचिंत्य-अपार महिमा को लक्षगत करके अनुभव में ले।

ज्ञानगोष्ठी

[नव तत्त्व संबंधी प्रश्नों के उत्तर]

प्रश्न (१)—अपने चैतन्यस्वभाव में यदि पूर्णत: स्थिर हो जाये तो अपने पास कौन-सा तत्त्व आता है?

उत्तर—मोक्षतत्त्व आता है।

प्रश्न (२)—अपन यदि भगवान की भक्ति-पूजा करें, और गुरु के प्रति तथा धर्मी-धर्मात्मा-जीवों के प्रति विनय-बहुमान करें तो अपने पास कौन-सा तत्त्व आता है?

उत्तर—पुण्यतत्त्व आता है। किंतु पुण्य से मोक्षमार्गरूप सच्चा धर्म मिल जायेगा, ऐसी श्रद्धा रखे तो मिथ्यात्वरूपी आस्रवतत्त्व ही मिलेगा।

प्रश्न (३)—कोई मूढ़ जीव बहुत जीवों को मार डाले-हिंसकभाव करे तो उसके पास कौन-सा तत्त्व आता है?

उत्तर—पापतत्त्व आता है।

प्रश्न (४)—अपने पास ऐसा कौन-सा तत्त्व है जो सर्वदा (अनादि-अनंत) अपने ही पास रहता है ?

उत्तर—जीवतत्त्व।

प्रश्न (५)—अपने पास यदि मोक्षतत्त्व आवे तो अन्य कौन-कौन तत्त्व छूट जाते हैं ?

उत्तर—अजीव (कर्म का संयोग) पाप, पुण्य, आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा, ये तत्त्व छूट जाते हैं।

प्रश्न (६)—एक जीव के साथ अधिक से अधिक कितने तत्त्व होते हैं ? और वे कौन-कौन ?

उत्तर—एक जीव के पास एक साथ अधिक से अधिक आठ तत्त्व होते हैं।—जीव, अजीव (कर्म का संयोग), पाप, पुण्य, आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा।

प्रश्न (७)—नौ में से कम से कम तत्त्व किस जीव के पास होते हैं ? और वे कौन-कौन ?

उत्तर—सिद्ध भगवान के पास सिर्फ दो ही तत्त्व हैं। जीव और मोक्ष।

प्रश्न (८)—जब सम्यग्दर्शन होता है, तब अपने पास कौन-कौन से नये तत्त्व आते हैं ?

उत्तर—अपने को जब सम्यग्दर्शन होता है, तब संवर और निर्जरातत्त्व तो नये आते हैं। और बाद में थोड़े समय में मोक्षतत्त्व जरूर आवे।

प्रश्न (९)—सम्यग्दर्शन होते समय अपने पास से कौन-कौन तत्त्वों का भागना शुरु होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी संबंधी सर्व आस्रव नष्ट होते हैं, शेष आस्रव और बंधतत्त्व जाने शुरु हो जाते हैं।

प्रश्न (१०)—सिद्ध भगवान के पास अधिक तत्त्व हैं कि तुम्हारे पास।

उत्तर—हमारे पास।

प्रश्न (११)—जहाँ संवरतत्त्व हो, वहाँ दूसरे कौन-कौन तत्त्व हो सकते हैं ?

उत्तर—जीव, अजीव (कर्म का संयोग) पाप, पुण्य, आस्रव, बंध और निर्जरा ये सात तत्त्व अमुक दशा तक हो सकते हैं।

प्रश्न (१२)—जहाँ संवरतत्त्व न हो, वहाँ दूसरे कौन-कौन तत्त्व हो सकते हैं ?

उत्तर—जीव, अजीव (कर्म का संबंध) पाप, पुण्य, आस्रव, बंध या मोक्ष तत्त्व हो सकते हैं।

प्रश्न (१३)—संवरतत्त्व की पूर्णता कब ?

उत्तर—चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय पर।

प्रश्न (१४)—निर्जरातत्त्व की पूर्णता कब ?

उत्तर—चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय पर।

प्रश्न (१५)—सिद्ध भगवंतों के पास कितने तत्त्व होते हैं ?

उत्तर—दो।

प्रश्न (१६)—मोक्षमार्ग अर्थात् कौन-कौन तत्त्व ?

उत्तर—संवर और निर्जरा।

प्रश्न (१७)—दुनिया में (जगत में) संवर तत्त्वों वाले जीव अधिक या मोक्ष तत्त्ववाले अधिक ?

उत्तर—मोक्षतत्त्ववाले।

प्रश्न (१८)—जगत में मोक्षतत्त्ववाले जीव अधिक या बंधतत्त्व के ?

उत्तर—बन्धतत्त्ववाले।

प्रश्न (१९)—जगत में जीवतत्त्व अधिक या अजीवतत्त्व ?

उत्तर—अजीवतत्त्व।

प्रश्न (२०)—तुम्हारे पास इस समय कौन-कौन तत्त्व हैं ?

उत्तर—जीव, अजीव, (कर्म का संयोग) पुण्य, पाप, आस्रव, बंध (और जो उत्तर देनेवाले साधक जीव हों तो संवर और निर्जरा ये दो तत्त्व अधिक समझें) यहाँ अध्यात्म में सम्यक्त्वपूर्वक की निर्जरा को ही निर्जरा मानने में आता है।

प्रश्न (२१)—नव तत्त्वों में से कौन-कौन तत्त्व अच्छे (हितरूप) हैं ?

उत्तर—जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

प्रश्न (२२)—मिथ्यादृष्टि जीव किन तत्त्वों का राजा है ?

उत्तर—पाप, आस्रव और बन्ध।

प्रश्न (२३)—नीचे के वाक्यों को पढ़ते हुए किन तत्त्वों की याद आती है ? (उनके उत्तर कोष्ठक में दिये गये हैं—)

१. जीव नरक में अपनी क्रोधादि कषाय द्वारा अत्यंत यातना भोगता है (पापतत्त्व)

२. स्वर्ग में भी सुख सचमुच नहीं किंतु कुछ मंदकषाय द्वारा सुखी-सा माना जाता है (पुण्यतत्त्व)

३. सिद्ध भगवंत एकांत संपूर्ण सुखी हैं (मोक्षतत्त्व)

४. चैतन्य के ध्यान से कर्म का नाश हो जाता है (निर्जरातत्त्व)

५. ज्ञान मेरा स्वभाव है (जीवतत्त्व)

६. मिथ्यादृष्टि को बहुत आमदनी है। सम्यग्दृष्टि को बहुत कम-काहे की ?-कर्म की (आस्रवतत्त्व)

७. सम्यग्दृष्टि को आय से व्यय अधिक है, काहे का ?-कर्म का (निर्जरातत्त्व)

८. मिथ्यादृष्टि के व्यय से आय अधिक है, काहे की ?-कर्म की (आस्रवतत्त्व)

९. सम्यग्दर्शन बगैर कर्मबंधन कभी अटकते-रुकते नहीं (संवरतत्त्व)

१०. जैसे पाप से कर्म बँधते हैं, वैसे ही पुण्य से भी कर्म बंधते हैं (बंधतत्त्व)

११. देह में ज्ञान नहीं (अजीवतत्त्व)

मैं जीवद्रव्य हूँ। ज्ञान मेरा गुण नित्य है, उसके द्वारा जानता हूँ, यह पर्याय है। गुण की क्रिया को परिवर्तनरूप कार्य को पर्याय कहते हैं। जो अनित्य है, एक समयस्थायी ही नयी-नयी होती रहती है, अपनी भूमिका के अनुसार।

हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे

भगवान जिनेन्द्र वीतरागदेव के प्रति जिनके परम बहुमान जागृत हुआ है, वीतरागता के जो उपासक हैं। आत्म परिणाम में समता रस के सिंचन से राग-द्वेष के दावानल को जो बुझाना चाहते हैं, ऐसे भक्त जिन प्रार्थना के बहाने वीतरागता की भावना भाते हैं।

हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे... हे जिन
रागद्वेष दावानल से बच, समता रस में भीजे
.... हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे॥

हे भगवन! मेरी बुद्धि ऐसी अंतर्मुख हो कि राग-द्वेषरूपी दावानल से रक्षा होकर मेरी आत्मा समता रस में तरबतर हो जाये... चैतन्य की परम शांति की वेदना में (संवेदन में) बुद्धि ऐसी अनुभूति करे कि कहीं भी राग-द्वेष को अवकाश (प्रवेश) ही न रहे।

फिर वीतरागता के लिये भेदज्ञान की तीव्र भावना से उपासक प्रार्थना करता है कि पर में त्याग अपनपन, जिनमें लाग न कबहुँ छीजे... हे जिन! मेरी ऐसी बुद्धि कीजे।

हे जिनेश! अंतर्मुख होते मेरे परिणति (दशा) ऐसी हो कि पर में (अन्य में) अपनापन त्यागकर निजात्म में ही लगे रहें और उसी में स्थिर बने रहें। और कभी उससे अलग हों ही नहीं।

अंतर्मुख होते मेरी परिणति (स्थिति) कैसी हो? कि—

कर्म कर्म फल मांहि न राचे, ज्ञान सुधा रस पीजे।
... हे जिन मेरी ऐसी बुद्धि कीजे॥

सर्वदा ज्ञानचेतना की ही भावना भाते हुए स्तुतिकार कहते हैं। हे जिन! कर्म में अथवा कर्म फल में मेरी बुद्धि किंचित् भी लिप्त न हो। और चैतन्य में लीनता द्वारा निरंतर ज्ञान सुधारस को ही पीता रहूँ। ऐसी मेरी बुद्धि करें (कीजिए)।

हे भगवन! मेरे साध्य ऐसी जो वीतरागता, सो आपको तो पूर्ण प्रगट है। इसलिये आप तो मेरे लिये ध्येयरूप हैं। इसप्रकार वर्णन करते हुए कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि—

मुझ कारज के तुम कारण वर अरज 'दौल' की लीजे
....हे जिन! मेरी ऐसी बुद्धि कीजे।

भेदज्ञानपूर्वक निजात्मा में लीनता, वीतरागता और ज्ञान चेतना ऐसा जो मेरा कर्तव्य उसके उत्तम कारणपने हे जिन! आप हैं.... क्योंकि आपको ध्येय बनाते हुए मेरे भेदज्ञान आदि कार्य की सिद्धि होती है। इसलिए हे भगवान! मेरी इस प्रकार की निर्मल बुद्धि करें।

सर्वज्ञदेव कथित छहों द्रव्यों की स्वतंत्रतादर्शक

: सामान्य गुण :

(१) अस्तित्वगुण—

कर्ता जगत का मानता जो 'कर्म या भगवान को',
वह भूलता है लोक में अस्तित्वगुण के ज्ञान को;
उत्पाद व्यययुत वस्तु है फिर भी सदा ध्रुवता धरे,
अस्तित्वगुण के योग से कोई नहीं जग में मरे॥१॥

(२) वस्तुत्वगुण—

वस्तुत्वगुण के योग से हो द्रव्य में स्व स्वक्रिया,
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही पान द्रव्यों ने किया;
सामान्य और विशेषता से कर रहे निज काम को;
यों मानकर वस्तुत्व को पाओ विमल शिवधाम को॥२॥

(३) द्रव्यत्वगुण—

द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को जग में पलटता है सदा,
लेकिन कभी भी द्रव्य तो तजता न लक्षण सम्पदा;
स्व-द्रव्य में मोक्षार्थि हो स्वाधीन सुख लो सर्वदा,
हो नाश जिससे आज तक की दुःखदायी भवकथा॥३॥

(४) प्रमेयत्वगुण—

सब द्रव्य-गुण प्रमेय से बनते विषय हैं ज्ञान के,
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से जानियो यों ध्यान से;
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज यह ज्ञान उसको जानता,
है स्व-पर सत्ता विश्व में सुदृष्टि उनको जानता॥४॥

(५) अगुरुलघुत्वगुण—

यह गुण अगुरुलघु भी सदा रखता महत्ता है महा,
गुण-द्रव्य को पररूप यह होने न देता है अहा;
निज गुण-पर्यय सर्व ही रहते सतत निजभाव में,
कर्ता न हर्ता अन्य कोई यों लखो स्व-स्वभाव में॥५॥

(६) प्रदेशत्वगुण—

प्रदेशत्वगुण की शक्ति से आकार द्रव्यों को धरे,
निजक्षेत्र में व्यापक रहे आकार भी स्वाधीन है;
आकार हैं सबके अलग, हो लीन अपने ज्ञान में,
जानों इन्हें सामान्य गुण रक्खो सदा श्रद्धान में॥६॥

(ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन)

लाख बात की एक बात

निर्ग्रंथ संतों की कोई भी शास्त्र में से मूलभूत एक ही धारा चलती है कि तुम अपने ज्ञायक चिदानंद के सन्मुख हो, पर को फिराने की बुद्धि मिथ्या है।

हे जीव! तेरे भूतार्थ ज्ञानस्वभाव का निर्णय कर स्वसन्मुख हो—'मैं तो नित्य विज्ञानघन हूँ, ज्ञान के सिवा अन्य पदार्थों का किंचित्मात्र कर्तृत्व मेरे में नहीं है।'

जहाँ तक जीव ऐसा निर्णय न करे, स्वसन्मुखता द्वारा सर्वज्ञ स्वभाव का निर्णय न करे, वहाँ तक उसे हित का उपाय मिलेगा नहीं और दिगम्बर संतों ने शास्त्रों में क्या कहा है, उसका उसको पता लगेगा नहीं।

वादिराज सूरिकृत

यशोधर चरित्र

प्रथम परिच्छेद

मेघों को देखकर-उनका गाजना सुनकर मोर जैसे आनंद से नाचने लगते हैं, वैसे ही जिन मुनिसुव्रतनाथ भगवान की गंभीर नयविवरणरूप ध्वनि को सुनकर जिनेन्द्र-भक्त जो इंद्ररूपी मोर बड़े आनंद से नृत्य करने लगते हैं, उन्हें (तीर्थंकर भगवान को) मैं नमस्कार करता हूँ। अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये पाँचों परमगुरु मुझे निर्वाण-मोक्षश्री प्रदान करें।

रत्न पर्वत से निकलते हैं। श्री समंतभद्र आदि महात्मा भी काव्यरूपी रत्नों के पैदा होने के स्थान-पर्वत हैं। वे मुझे सुंदर वचनरूपी रत्न प्रदान करें।

जो जीव निजकल्याण के हेतु एकाग्र चित्त से यशोधर का पवित्र चरित्र सुनेंगे, वे पुण्य संचय करेंगे, और अशुभ कर्म-पाप कर्म नष्ट होंगे। [वीतरागभाव को भी कहीं पर शुभ कहा है, अकेला शुभराग से तो मिथ्यात्व आदि पापकर्म घातिकर्म भी बंधते हैं। अतः प्रथमानुयोग शास्त्र में अकेले शुभराग को उपचार से भी धर्म नहीं माना है।]

यह चरित धर्म जिज्ञासु जीव को संवेग-धर्मानुराग को बढ़ायेगा, निर्वेग-संसार, शरीर, भोगों में उदासीन और पवित्र जीव में उत्साह लाने में कारण है।

जिसने पार्श्वनाथ चरित और रामचरित बनाया है, वही वादिराज सूरि ने इस चरित को भी बनाया है। भारतवर्ष के अंतर्गत एक यौधेय नाम का देश-उनकी मुख्य राजधानी राजपुरनगर था। वह स्वर्ग समान सुंदर, ऊँचे मकान और सोने का बना हुआ माना जाता था। दोपहर का सूर्य जब ऊपर आता था, तब उस शहर का परिमंडल घेरा-सा सुंदर दीखता था, बहुत से मकानों के शिखर पद्मराग मणियों से जड़े हुए थे। दोपहर के सूर्य की किरणें और उन मणियों की किरणें जब परस्पर में मिलती थी, तब ऐसा जान पड़ता था, जैसा वह प्रकाश प्रातःकाल के सूर्य का हो। धनवानों के मकानों पर ध्वजाएँ जब वायु से फहराने लगती हैं, उस समय की शोभा बड़ी ही मनोहर होती है। मानों वे याचकों को चारों ओर से दानार्थ बुला रही हों।

वहाँ के रहवासी दानादि पवित्र कामों में खूब खुले हाथों धन खर्च करते थे, तब वह प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। जैसे विद्या जितनी दूसरों को दी जाये - पढ़ाई जाये - तब भी वह

बढ़ती ही जाती है। धन खर्च करने से नष्ट नहीं होता किंतु पुण्य नष्ट होते ही नष्ट होता है।

राजपुर नगर के दक्षिण की ओर एक चंडमारी देवी का मंदिर था, देवी के भक्तों को जीवों की बलि द्वारा मांस भक्षण का बड़ा शौक था, इसलिये अति मंदबुद्धि समाज के पास प्रचार किया करते थे कि 'यदि पशुहत्या नरहत्या करके इस देवी की जीवों की बलि के द्वारा पूजा नहीं करोगे तो वह देवी राज्य और राष्ट्र का सर्वनाश करने के लिये बड़ा विकरालरूप धारण करती है। जब उनकी पूजा इसप्रकार करोगे तो धन-संपत्ति मिलेगी, दुर्भिक्ष, हैजा, प्लेग महामारी आदि नष्ट करेगी' भोले लोग तो अनुकूलता की आशा और प्रतिकूलता के भय से पर से अपना इष्ट-अनिष्ट मान रहे हैं, पर से भय और पराई आशावश पुण्य-पाप और उनके फल को भी समझना चाहते नहीं।

आश्विन और चैत्रमास में वहाँ यात्री का मेला लगता था, अनाड़ी लोग इकट्ठे होकर देवी को बलि चढ़ाते थे। और उस हिंसा के द्वारा प्रसन्न होकर देवी से वे मनमाना वर माँगते थे। वहाँ के मारिदत्त नामक राजा भी उसी भ्रमणा के चक्कर में आया, वो भी देवी के द्वारा मेरा भला होगा समझकर देवी के मंदिर में आया। उनकी आज्ञा से लोग निरपराध मूकप्राणी, मुर्गे, बकरे, हरिण, सूअर और भैंसा आदि हर एक प्राणी की एक-एक जोड़ी लेकर वहाँ आये, वे सब मंदिर में बाँध दिये गये। मंदिर की विकरालता को देखकर वे चिल्लाने लगे-बिलबिलाने लगे। उनके भयंकर शब्द से पापीजनों को पाप का डर नहीं था हँस रहे थे, मानों उन पशुओं के करुणा और भयंकर शब्दों से पृथ्वी फटकर-नरकों ने अपने सब द्वार खोल दिये।

मारीदत्त ने हाथ में तलवार उठाकर चंडकर्मा को आज्ञा की कि—हाँ, एक सुंदर मनुष्य युगल और लाओ जो अच्छे लक्षणों से युक्त हो। राजा ने उसे आज्ञा देकर एकत्र हुए प्रजजनों की ओर मुँह फेर और घमंड से बोला—देखो, जब मैं अपने हाथ से पहले मनुष्य-युगल की देवी को बलि दे चुकूँ, इसके बाद आप लोग और जीवों की बलि दें, इससे उल्टा करोगे तो पूजन विधि का नाश होगा, देवी कुपित होकर बाल बच्चे, स्त्री, पुत्र, पुरुष, युवा, वृद्ध यहाँ तक कि पशु पक्षियों का भी प्रलय कर डालेगी।

मालिक की आज्ञा होते ही चंडकर्मा ने उसी वक्त अपने नौकरों को इधर-उधर सुलक्षणवाले मनुष्य युगल ढूँढ़ने को भेजा और स्वयं भी चला।

इसीसमय परमदयालु-पवित्र वीतरागविज्ञानमय करुणा के सागर ऐसे ५०० मुनियों को

अपने साथ लेकर परमेष्ठी मुनिराज श्री सुदत्त मुनि उधर आ निकले, वे उत्तर दिशा में राजपुर नगर के उद्यान में ठहरे।

उनमें न राग था, न द्वेष था, न मोह या अज्ञान था, निरंतर निर्मल भेदविज्ञान की प्रवीणता से प्राप्त अंतरंग में प्रगट सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलंबन के बल द्वारा बलवान श्रमण सब सच्चे जितेन्द्रिय थे, असंग अखंड अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंदादि गुणों की संपदा का जिनके पास अक्षय धन था और अंतरंग में उसी आत्मवैभव को अधिकाधिक प्राप्त करने के लिये जो सच्चे प्रयत्न में सावधान थे।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥१०॥

आत्मिक सुख में ही नित्य तृप्त रहने से जो पाँच इन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित होते हैं, छह काय जीवों का घात करनेरूप आरम्भ रहित, बाह्य-अभ्यंतर समस्त परिग्रह से रहित और ज्ञान-ध्यान-तप में आसक्त ऐसे तपस्वी (सम्यक्रत्नत्रय के प्रताप से प्रतापवंत) हैं, उन गुरुओं की प्रशंसा की जाती है।

वे मुनिगण कैसे थे? उन्होंने अपने मन को खूब वश कर लिया था—अर्थात् संयमी थे। हितमय और बहुत थोड़ा बोलते थे, शरीर की क्रियाओं से—चलने, फिरने से—कभी जीवों को बाधा नहीं पहुँचाते थे। उनमें माया, मिथ्यात्व और निदानरूपी तीन शल्य जरा भी नहीं थे, अपने मन में यह भावन लाते थे कि मैं इतनी तपश्चर्या करता हूँ, कठिन कठिन परिषह सहता हूँ, इसका फल मुझे आगामी जन्म में अच्छा मिले—में सब तरह सुख प्राप्त करूँ। न उन्हें ऋद्धि की चाह थी और न वे भोग विलास की कभी इच्छा करते थे। वे सदा निर्भय रहा करते थे, उन्हें मृत्यु, अरक्षा, अगुप्ति आदि किसी प्रकार का भय न था। निरंतर जीवों की रक्षा और अंतरंग में रागादि दोषों की उत्पत्ति न होने पर अहिंसा का पालन करते थे, शास्त्रों का अभ्यास करते थे। अपने समय-शक्ति और उपयोग को मुख्यतया आत्मध्यान में ही लगाते थे। वे शुद्ध ज्ञान के उद्दीप्त सूर्य थे, तपश्चर्या के स्थान थे, व्रतों के समुद्र थे, भव्यजनोंरूपी कमलों के लिये सूर्य थे। उनके दर्शनों से सबको बड़ा आनंद होता था। उनका स्वभाव और आचार बड़ा ही पवित्र था।

वे मार्ग में विहार जनित दोषों की शुद्धि के लिये वहीं एक पवित्र जगह में आत्मध्यान करने को बैठ गये और उस दिन सभी मुनियों ने उपवास किया। (क्रमशः)

शुद्ध आत्मा की सेवा करता हुआ धर्मी जीवों का संघ शिवपुरी में जा रहा है।

[तू भी उसका आदर करके उसमें सम्मिलित हो जा]

(परमात्मप्रकाश, गाथा ३९ के प्रवचन से)

मोक्ष के लिये एक ही कारण-शुद्धात्मा केवलज्ञानस्वभावी है, उसी को उपादेय जानकर ध्यान में ध्याना, इसी को भगवान ने मोक्ष का कारण कहा है। जिसके केवलज्ञानरूपी आकाश में समस्त लोकालोक एक नक्षत्र समान प्रतिभासित होते हैं-ऐसे अपूर्व ज्ञानसामर्थ्य से पूर्ण परमात्म तत्त्व ही धर्मात्माओं को उपादेय है-किसप्रकार? कि समस्त विकल्प रहित समाधि काल में यह परमात्मतत्त्व उपादेय है। मोक्षपुरी में जितने भी जीव गये, जाते हैं, जावेंगे, वे सभी जीव अंतर में ऐसे परमात्मतत्त्व को उपादेय करके ही जाते हैं। मोक्षगामी जीवों का संघ परमात्मतत्त्व की आराधना करता हुआ मोक्ष में चला जा रहा है।

शुद्ध परमात्मतत्त्व निर्विकल्प ध्यान में प्रगट होता है, तब परम आनंदसहित अनुभव में आता है, और वही आराधनेयोग्य है। उसकी आराधना ही मोक्ष का मार्ग है। मोक्षार्थी जीवों को अपने परमात्मतत्त्व के अलावा दूसरा कुछ भी आराधने योग्य है ही नहीं, ज्ञानीजन तो उसी का आराधन कर रहे हैं, और ज्ञानी के अनुसार दूसरे आत्मार्थी जिज्ञासु जीवों को भी वही आराधने योग्य है।

हे जीव! मोक्ष के लिये तू ऐसे आत्मा का सेवन कर। किसप्रकार? कि अंतर में निर्विकल्प ध्यान द्वारा उसको उपादेय करके पहिचान। धारणा मात्र से नहीं, शास्त्र के श्रवण से नहीं, विकल्प से नहीं, परंतु उपयोग को अंतर में एकाग्र करके चैतन्यस्वभाव को उपादेय जान। संत अंतर में ध्यान द्वारा जिस ज्ञानस्वरूप आत्मा का ध्यान करते हैं, उसी को तू निरंतर आदरणीय समझ, कारण कि वही एक निरंतर मोक्ष का कारण है; बीच में दूसरे किसी को एक क्षण भी मोक्ष का कारण मानकर सेवन मत कर।

जिसका ध्यान करने से परम आनंद स्फुरित हो—ऐसा तत्त्व मोक्ष का कारण है, उसी को तू श्रद्धा में, ज्ञान में, अनुभव में सेवन कर; आदरणीय मान। धर्मी जीवों के झुण्ड के झुण्ड ऐसे आत्मा का सेवन करके मोक्ष की साधना कर रहे हैं। तुझे उन साधक जीवों में सम्मिलित

होना हो तो तू भी ऐसे आत्मा को पहिचान कर उसी का सेवन कर।

धर्मी जीवों का संघ ऐसे आत्मा का सेवन करता हुआ मोक्षपुरी के मार्ग पर चला जा रहा है। तू भी ऐसे ही आत्मा का सेवन करके उस संघ में सम्मिलित हो जा।

चार संघ के नायक श्री सीमंधर परमात्मा वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं, वे ऐसा मार्ग बतला रहे हैं कि शुद्धात्मा का सेवन ही अविचल मोक्षमार्ग है। वहाँ मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका—ऐसे चारों संघ उस मार्ग का सेवन करके मोक्ष की साधना कर रहे हैं; संत भी यहाँ ऐसा ही मार्ग प्रकाशित कर रहे हैं और धर्मात्मा उसे साध रहे हैं। शुद्धात्मा की आराधना रूपी यह एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं।

जिसप्रकार गन्ने को चूसने पर मीठा रस आता है। उसीप्रकार धर्मात्मा को शुद्धात्मा चूसने योग्य है, उसे चूसने से परम आनंद रस की धाराएँ छूटती हैं। ऐसा परम शुद्धात्मतत्त्व धर्मी को अंतर के ध्यान में प्रगट होता है, किसी बहिर्मुखी भाव से यह तत्त्व प्रगट नहीं हो सकता। विकारी भाव तो इसके शत्रु हैं, तो फिर उस विकार के ध्यान में यह परम तत्त्व कैसे प्रगट हो सकता है ? राग रहित शांत-निर्विकल्प ध्यान में ही परमात्मतत्त्व आनंद सहित प्रगट होता है और वही मोक्ष का कारण है।

ऐसे परमात्मतत्त्व को उपादेय जानकर अंतर में ध्याने से केवलज्ञान और परम आनंद की रचना होती है और उसे भूलकर अज्ञानी जीव अपनी पर्याय में त्रस-स्थावर पर्यायोंरूप संसार की रचना करता है। त्रस-स्थावर जीवों का उत्पादक या बनानेवाला कोई दूसरा नहीं है। ईश्वर कर्ता नहीं है, परंतु यह आत्मा स्वयं ही अपने परमात्म तत्त्व को भूलकर, राग-द्वेष-मोह द्वारा अपनी पर्यायों में ही त्रस-स्थावर पर्यायों की रचना करता है, इसलिये वही त्रस-स्थावर का उत्पादक माना गया है। और जहाँ अंतर्मुखस्वभाव की अपार महिमा संतों द्वारा सुनकर उसे निर्विकल्प ध्यान में उपादेय किया, वहाँ भवभ्रमण टल गया और परमात्मपद प्रगट हुआ। अहो, मोक्ष का कारण ऐसा उपादेय तत्त्व संतों ने परम अनुग्रह से बताया है। हे जीव! तू ऐसे तत्त्व का परम उल्लास से सेवन कर, और संतों के साथ शिवपुरी के संघ में सम्मिलित हो जा।

जैन शिक्षण कक्षा में प्रश्नोत्तर

सोनगढ़, तारीख १६-८-६७

प्रश्न—निमित्त को व्यवहार कर्ता कहा जाता है, वह किसप्रकार ?

उत्तर—जीव के अज्ञानभाव को निमित्त देखकर कर्ता कहा जाता है, वह उपचार है, व्यवहार है, असत्यार्थ है। अज्ञानी संयोग में एकताबुद्धि से संयोग की ओर से देखता है और वास्तव में मानता ही है कि निमित्त द्वारा पर का काम (कार्य परिणमन) होता है। कर्तृत्व का यह उपचार किसप्रकार प्रवर्तित हुआ ? देखो, समयसार गाथा १०५-१०६ और टीका।

आत्मा पुद्गलकर्म को न तो ग्रहण करता है, न परिणमाता है, और न उत्पन्न करता है, फिर भी जीव, पुद्गलकर्म को (पर को) बाँधता है, छोड़ता है, आदि कर्ता कहना, वह वास्तव में उपचार कथन है। समयसार, गाथा १०८।

राजा को प्रजा के गुण-दोषों का उत्पादक कहना उपचार है, उसीप्रकार जीव ने कर्म बाँधे-छोड़े, किये, सम्यग्दृष्टि जीव नये कर्म को रोकते हैं, कर्मों की निर्जरा करते हैं, कर्मों के उदय की बलजोरी है, जीव शक्ति के अनुसार कर्मोदय को जीतने का महान उद्यम करता है, निमित्त आये तो उपादान में कार्य होवे, निमित्त बिना न हो-निमित्त का प्रभाव, असर, मदद हो, तब उपादान में कार्य होगा आदि सब कथन उपचार है। उपादान स्वयं कार्य परिणत होता है, तब निमित्त को उपचार कारण कहा जाता है। निमित्त है, ऐसा मानना बराबर है, किंतु वह उपादान के लिये सच्चा कारण नहीं है, ऐसा जानना चाहिये।

तारीख ११-८-६७

प्रश्न—शुभबंध को भला और पाप को बुरा मानने में कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—बंधतत्त्व की भूल है, कारण कि उसमें हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय सभी बंधस्वरूप है। शुभकर्म और शुभराग दोनों बंधरूप ही है-मोक्षमार्गरूप किंचित् नहीं है। पुण्य और पुण्यबंध को भला माना, उसने उसके निमित्त जो बाह्य संयोग है, उसमें इष्ट अनिष्टपने की वासना की है, वह मिथ्यात्व है।

प्रश्न—जड़ कर्म का आत्मा तो खिलौना है, जड़ कर्म ही जीव को संसार में रुलाते हैं, ऐसा मानने में कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—जीव तत्त्व की भूल है। अशुद्ध उपादान को नहीं माना (जो स्वयं कार्यरूप परिणमें, उसको उपादान कहते हैं) हेतु—यदि जड़कर्म जीव को विकार करावे तो जीव कभी पुरुषार्थ कर नहीं सकता और कभी मोक्षदशा की प्राप्ति नहीं होगी। दृष्टांत—सांख्यमति, या कोई मिथ्यादृष्टि कर्म के कारण रागादि दोषों की उत्पत्ति मानते हैं। सिद्धान्त—उसीप्रकार जैन में आकर जड़ कर्मों से जीव को रागादि होना माने तो उनको सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा, मोक्ष तो कहाँ से होगी ?

समाचार संग्रह

सोनगढ़ सुवर्णपुरी, तारीख ३-११-६७—परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में समयसारजी कलश टीका पांडे राजमल्लजी कृत तथा समयसारजी शास्त्र चालू है, तत्त्व जिज्ञासुओं की संख्या बढ़ रही है।

श्री दिगम्बर जैन धर्म शिक्षण शिविर

हिम्मतनगर : महावीरनगर—तारीख ५-१०-६७ से १६-१०-६७ तक समुचित सर्व प्रबंध सहित धार्मिक शिक्षण कक्षा सुंदर ढंग से संपन्न हुई। शिविर का उद्घाटन श्री खेमचंदभाई जे० सेठ के द्वारा हुआ, समारंभ के प्रमुख श्री माणेकलाल रायचंदभाई गांधी बम्बई थे। शिक्षण शिविर में प्रारंभ में संख्या १२५ थी, बढ़कर २५३ की हो गई थी। नियमित कार्यक्रम, सवेरे ६ से ७ बजे तक जिनेन्द्र दर्शन-पूजन, ८ से ९, २ से ३ श्री खेमचंदभाई द्वारा श्री समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन, ९ से १०, १ से २, ४ से ५, ८ से ९ तक जैन शिक्षण वर्ग श्री चिमनलालजी तथा श्री नेमीचंदजी द्वारा। ३ से ४ जिनेन्द्र भक्ति। रात्रि को ७ से ८ शंका-समाधान। हमेशा आठ घंटा तक कार्यक्रम बहुत उत्तम प्रकार चला, सभी का बड़ा भारी उल्लास था। आदरणीय श्री खेमचंदभाई की अनोखी अति आकर्षक शैली द्वारा वातावरण विशेष उत्साह प्रेरक था। समाज में कुछ गलतफहमी थी, वह दूर हुई।

शिक्षण शिविर के उद्घाटन के दिन ५०० की संख्या थी। आसोज सुदी १० को महावीर नगर दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर के लिये शिलान्यास की विधि दहेगांव निवासी श्री भीखाभाई तथा उनके सुपुत्र श्री हीराभाई के शुभ हस्त से हुई, उस अवसर पर मेहमानों की संख्या १००० थी और शिक्षार्थियों की संख्या ६०० थी। शिलान्यास प्रसंग पर सवेरे जिनेन्द्र रथयात्रा हाथी सहित निकाली थी, वेदी प्रतिष्ठा के समान बहुत उत्तम महोत्सव दृष्टिगोचर हो रहा था। बाहर गांव से बहुत मेहमान आये, करीब २१ हजार की आय हुई। रात्रि को महावीरनगर में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा की रंगीन फिल्म दिखाई गई थी। अंतिम दिन श्री खेमचंदभाई जे० सेठ को दिगम्बर जैन धर्म शिक्षण समिति द्वारा अभिनंदन पत्र दिया गया। परमोपकारी पूज्य श्री कानजीस्वामी का महान उपकार माना गया। तारीख १६-१०-६७ श्री खेमचंदभाई रणासण पधारे, यहाँ नूतन जिनमंदिर तैयार हो रहा है, यहाँ प्रवचन रखा गया था।

तलोद स्टेशन—बाजार, यहाँ जिनमंदिर में दर्शन के पश्चात् रात्रि को श्री खेमचंदभाई द्वारा प्रवचन हुआ। रखियाल स्टेशन जिनमंदिर में दर्शन के बाद दहेगांव गये, पूज्य कानजीस्वामी के सदुपदेश से यहाँ भी नया दिगम्बर जिनमंदिर बना है, (पूर्व यहाँ सब श्वेताम्बरी जैन थे) तारीख १७ सवेरे से श्री खेमचंदभाई द्वारा प्रवचन हुआ, दोपहर को अहमदाबाद में खाड़िया विभाग में दिगम्बर जिनमंदिर में प्रवचन हुआ, इसप्रकार सर्वत्र बड़ी संख्या ने तीव्र जिज्ञासा पूर्वक लाभ लिया।

बाबूभाई चुनीलाल महेता
फतेपुर-जिला साबरकांठा

तत्त्वगोष्ठी का अपूर्व आयोजन

नागपुर—दिगम्बर जैन समाज के सौभाग्य से जैन धर्म के मर्मज्ञ, पवित्र प्रतिष्ठा प्राप्त, विशेष योग्यतावान विद्वान श्री धन्नालालजी (ग्वालियर) जो दिगम्बर जैन परवार मंदिर ट्रस्ट के विशेष निमंत्रण पर तारीख ४-१०-६७ को यहाँ पधारे। पवित्र अध्यात्म तत्त्व के लिये नागपुर में यह प्रथम ही अवसर था। प्रातः ६ से ७, ८ से ९, दोपहर २ से ३, रात्रि को ९ से १० कुल ४ घंटों के प्रतिदिनों के कार्यक्रमों में एक सप्ताह तक भारी संख्या में ठीक समय पर स्त्री-पुरुष सम्मिलित होकर तत्त्वचर्चा में भी भाग लेते थे। लोगों के हृदय गदगद हो गये। पंडितजी का प्रवचन 'मंत्र मुग्ध' होकर सभी जिज्ञासु सुनते थे, १२ से २ तक शंका-समाधान, प्रातः जैन

सिद्धान्त प्रवेशिका, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, अष्टपाहुड़ ग्रंथों पर पंडितजी के मार्मिक सारगर्भित प्रवचन एवं शिक्षण होता था। हित-अहित अपने ही भावों के अनुसार होते हैं, निमित्त-उपादान-निश्चय व्यवहार, सर्वज्ञ कथित तत्त्वार्थों का स्वरूप, सम्यक् अनेकांत-एकांत, मोक्षमार्ग तथा आत्मतत्त्व की यथार्थ महिमा एवं स्वरूप सरल शब्दों में आगम प्रमाण सहित बताकर मार्ग दर्शन कराया गया।

पंडितजी की विद्वत्ता, निस्पृहता आदि गुणों के उल्लेख हमारी लेखनी से बाहर है। पंडितजी का अभिनंदन समारोह धर्मस्नेही सेठ श्री किशनलालजी रांवका के सभापतित्व में तारीख १०-१०-६७ को हुआ, दिगम्बर जैन समाज तथा मुमुक्षु मंडल नागपुर की ओर से रजतपत्र पर अभिनंदन पत्र समर्पित किया गया। स्थानीय अन्य संस्थाओं के द्वारा स्वागत एवं पंडितजी की विद्वत्ता पर प्रकाश डाले, उनमें सि० मूलचंदजी, पंडित ताराचंदजी, श्री निर्मलकुमारजी, श्री कपूरचंदजी साहित्यरत्न आदि थे। इस अपूर्व आयोजन को सफल बनाने में श्री सम्पतलालजी, श्री सुंदरलालजी तथा संपूर्ण समाज का सहयोग था।

विनीत-शिखरचंद बड़कुर

हमारे नैराबी का पत्र

अफ्रीका में नैरोबी मुमुक्षु मंडल के उत्साही कार्यकर्ता भाई श्री करमणभाई नरसी ने स्वयं की सुपुत्री के लग्न प्रसंग जैन विधि अनुसार कराकरके तथा उस समय चार हजार जितनी धार्मिक पुस्तकें भेंट स्वरूप बांटकर धर्म प्रभावना का उत्साह बताया है। उनकी ऐसी प्रीति देख करके उस प्रसंग में उपस्थित चार हजार जितने गुजराती भाई बहुत ही प्रसन्नचित्त हुए थे। वे स्वयं का तारीख ११-९-६७ के पत्र में पूज्य कानजीस्वामी का महान उपकार मानकर लिखते हैं कि—लग्न में जैन विधि होने से धर्म की बहुत प्रभावना हुई है। सुबह जिनमंदिर में बहुत मुमुक्षुओं सहित प्रभु पूजा तथा भक्ति करके सिद्धचक्रजी को तथा शास्त्रजी को गाजे-बाजे से मंडप में स्थापित किया। लगभग चार हजार मुमुक्षुओं की संख्या के मध्य में जैन विधि हुई, उसको देख करके तथा सुन करके सारा जैन समाज बहुत प्रभावित हुआ था, और गुरुदेव तथा जैनधर्म की जय-जयकार हुई। इस प्रसंग में भगवान ऋषभदेव चरित, जैन बाल पोथी, 'कर विचार तो पाम' इत्यादि चार हजार जितनी धार्मिक पुस्तकें भेंटरूप दी थी; सर्व में उन पुस्तकों

को पढ़ाया और चार दिवस तक तो घर-घर दुकान-दुकान इसकी ही चर्चा चलती थी, और केन्या (अफ्रीका) के अजैन समाज के ऊपर भी बहुत छाप पड़ी। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म के सेवन से जीवों का कितना अहित होता है और सच्चे देव-गुरु-धर्म का सेवन भव समुद्र से तरने के लिये जीवों को कितना उपकारी होता है-इत्यादि बहुत सी बातों का स्पष्टीकरण इस प्रसंग पर हुआ था। लग्न प्रसंग देव-गुरु-धर्म की पूजा भक्ति की मुख्यता पूर्वक मनाया गया होने से 'यह ही परिपूर्ण सत् है' ऐसा वातावरण फैल गया था। धर्म में पिछड़े हुए अफ्रीका में भी आज ऐसा जो कुछ बन रहा है, वह गुरुदेव का ही महान प्रभाव है। जैन धर्म का संदेश जगत में गूँजता है, लंदन से आये हुए अपने भाईगण भी पुस्तकें ले गये हैं और बहुत ही श्रद्धावान बने हैं। कालेज में पढ़नेवाले विद्यार्थी भी बहुत आये थे और जैन धर्म से बहुत ही प्रभावित हुये हैं।

(वर्तमान में भी वहाँ पर धार्मिक पुस्तकों की विशेष आवश्यकता होने से सोनगढ़ से दूसरी पुस्तकें मंगाई हैं।)

नया प्रकाशन

छहढाला सुबोध टीका-सचित्र (आवृत्ति)

यह ग्रंथ सर्वज्ञ वीतराग कथित सर्व शास्त्रों के साररूप होने से, पाठय पुस्तकरूप में भी अति सुगम और प्रसिद्ध है, संक्षेप में आत्महितरूप और गागर में सागर समान जैन तत्त्व ज्ञान भरा है, सब कोई समझ सके ऐसी स्पष्ट शैली सहित सचित्र ग्रंथ ऐसा सुंदर है कि वर्तमान समाज में सब जगह जिज्ञासुओं को देख-देखकर बांटने योग्य है। पृष्ठ संख्या २१०, लागत मूल्य १-५० होने पर भी प्रचारार्थ १) ही है, कमीशन नहीं है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

अपूर्व अवसर

अमर काव्य पर प्रवचन तथा कुन्दकुन्दाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा तथा समाधिमरण स्वरूपादि संग्रह ग्रंथ-सेठी ग्रंथमाला द्वारा तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या १८०, मूल्य १-५०

यह ग्रंथ सातिशय रोचक, आत्मिक उत्साहमय प्रबल पराक्रम और आध्यात्मिक रसास्वाद के रसिकजनों के लिये बारंबार पढ़ने योग्य है, उनकी माँग हमेशा चालू है, इसलिये तीसरी आवृत्ति है। इस बार पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी के सुपुत्र पंडित श्री गुमानीरामजी कृत बृ० समाधिमरण स्वरूप तथा पंडित जयचंदजी कृत बारह भावना बढ़ायी है।

चिद्विलास (आधुनिक भाषा में)

सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित दूसरी आवृत्ति। पृ० सं० १९६, मूल्य १-५०, पोस्टेज अलग। अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन, ज्ञानदर्पण, अध्यात्म पंचसंग्रह, भावदीपिकादि ग्रंथों के कर्ता, अध्यात्मतत्त्व द्रव्यानुयोग के विशेषज्ञ अधिकारी, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी शाह काशलीवाल कृत यह 'चिद्विलास' ग्रंथ जो प्रवचनसार आदि परमागम के संक्षेप साररूप है-अनेक शास्त्रों के गहन अध्ययन चिंतन के फलरूप सुंदर, रोचक और प्रौढ़ रचना है। हरेक स्वाध्याय प्रेमी को बारंबार पढ़ने योग्य है।

नियमसार पद्यानुवाद, मूल्य २५ पैसे

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सूचना—मोक्षमार्गप्रकाशक की सोनगढ़ की सब प्रतियाँ बिक चुकी हैं, किंतु जयपुर में १५० प्रति हैं। एक साथ १० प्रति से ज्यादा नहीं मिलेगी, ज्यादा चाहिये तो प्रथम से अपना आर्डर बुक करा देवें। अष्टपाहुड़ भी जयपुर से छपनेवाला है, आपको जितनी प्रति चाहिये, इसका भी जयपुर लिखकर आर्डर बुक करा देवें।

पता—टोडरमल स्मारक भवन
ठि० ए-४, गांधीनगर रोड, बापूनगर, पोस्ट जयपुर (राजस्थान)

जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा, भाग १-२ विस्तृत ऐतिहासिक चर्चा

बड़े आकार की दो पुस्तक, पृष्ठ संख्या ८५०, मूल्य १६) पोस्टेज अलग। प्रकाशक टोडरमलजी स्मारक ग्रंथमाला। उसमें आचार्य श्री शिवसागर मुनि महाराज के सामने दो पक्ष के विद्वानों द्वारा जो लिखित चर्चा हुई थी, वही इस ग्रंथ में छपवा दी है। मध्यस्थ होकर जिज्ञासुगण स्वतंत्रतया निर्णय करें। यह पुस्तकें १-सोनगढ़ भी मिलेंगी।

२- पता - टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, गांधीनगर रोड, बापूनगर, पोस्ट जयपुर (राजस्थान)।

सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन, जो सर्वज्ञ वीतराग कथित मोक्षमार्ग (सुख का उपाय) समझने के लिये परमोपकारी हैं, उनका अपूर्व यथार्थ लाभ लेने के लिये निम्नोक्त ग्रंथों का —

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५-०
अष्टपाहुड़ शास्त्र	प्रेस में
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४-०
श्री नियमसार शास्त्र	४-०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३-५०
समयसार प्रवचन, भाग १-२-३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	अप्राप्य
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ-९००	५-०
स्वयंभू स्तोत्र	०-५०
मुक्ति का मार्ग	०-५०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १,२,३ प्र.	०-६०
योगसार-निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०-१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०-३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१-०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०-७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	छपेगा
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) जिसमें पीछे से किसी के द्वारा बढ़ाये कथन शामिल नहीं किये गये हैं, मूल में जो कथन है वही आधुनिक भाषा में	२-०
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	२-७५
जैन बाल पोथी	०-२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	अप्राप्य
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	अप्राप्य
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	अप्राप्य
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा.	प्रेस में
भेदविज्ञानसार	अप्राप्य
अध्यात्मपाठ संग्रह	४-०
वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
स्तोत्रत्रयी	०-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२-०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३-७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में १८) ग्रन्थ का मात्र	६-०
अभिनंदन ग्रंथ	७-०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)

प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।